Chap-7

सप्तम अध्याय

डा० भारती का नाट्य- साहित्य

सप्तम अध्याय

:: नाट्य - साहित्य ::

आलोच्य कृतियां एवं नाटकीय कला- सौष्ठव के परिप्रेक्ष्य में उनका अध्ययन

डा0 भारती जी ने कम ही नाटक लिखे हैं। सन् 1954 में केवल दो ही नाट्य-कृतियां 'अन्धायुग' (गीति-नाट्य) एवं 'नदी प्यासी थी' (एकांकी-संग्रह) लिखकर उन्होंने अपने समकालीन नाटककारों में विशेष ख्याति प्राप्त की है। आधुनिक नाटकीय रचना-शिल्प के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रयोगों की सफल अभिनयात्मक नियोजना ही नाटककार डा0 भारती जी की ख्याति का मूल कारण है। इससे परम्परित नाट्य-परम्परा में एक नये मोड़ की प्रतिस्थापना हो सकी है। तथाकथित तथ्य की ओर इंगित करते हुए विशेषकर 'अन्धायुग' के संदर्भ में प्राय: विद्वानों ने कहा है - "डा0 भारती के पूर्व जो भी गीति-नाट्य लिखे गये थे, वे लघु नाटक बन कर रह गये। 'अन्धायुग' नाटक में आधुनिक गीति-नाट्य की शैली शिल्प का पूरा पूरा और सफलतापूर्वक निर्वाह किया गया है।"[1] इसी प्रकार डा0 सुरेश अवस्थी जी के शब्दों में - "'अन्धायुग' पद्य-नाट्य में एक नया प्रयोग है और नाट्य-रचना की प्रचलित विधियों और शैलियों को छोड़कर एक नये रूप की सृष्टि करता है।"[2]

'अन्धायुग': (वस्तु -नियोजना)

डा0 भारती जी रचित 'अन्धायुग' एक बहुचर्चित गीति-नाट्यात्मक प्रबंध-

---

1- डा0 विजय बापट- 'प्रसादोत्तर नाट्य-साहित्य' पृ0 204

2- दे0 'विवेक के रंग' - पृ0 393 डा0 सुरेश अवस्थी जी का लेख।

काव्य है। इसकी कथा-वस्तु महाभारत के अठारहें दिनकी संध्या से लेकर प्रभास-तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक के इतिवृत्त पर आधारित है। यद्यपि अधिकांश कथा-वस्तु 'प्रख्यात' है तथापि इसमें कुछ उत्पाद्य कथा-सूत्र भी मिलते हैं। स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि- 'इस दृश्य-काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिये महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। अधिकतर कथा-वस्तु 'प्रख्यात' है केवल कुछ ही तत्व 'उत्पाद्य' हैं, कुछ स्वकल्पित पात्र और स्वकल्पित घटनाएं।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर 'अंधायुग' की कथा-वस्तु को मुख्यतया तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है यथा(1) प्रख्यात(2) पूर्णतः उत्पाद्य एवं (3) मिश्र कथा-वस्तु। इसमें वर्णित 'दुर्योधन की पराजय', 'युधिष्ठिर के अर्द्ध-सत्य से अश्वत्थामा की मनोग्रंथि का जन्म, कृष्ण की गांधारी से अंतिम वार्तालाप जैसे मार्मिक प्रसंग प्रख्यात हैं। दोनों प्रहरी, युद्ध याचक और गूंगा सैनिक कल्पित पात्र हैं और उनसे सम्बंधित घटनाएं भी कल्पित होने से, उक्त पात्र एवं घटनाएं पूर्णतः उत्पाद्य हैं। इसी प्रकार युयुत्सु की आत्महत्या, अश्वत्थामा को कृष्ण की मृत्यु के प्रत्यक्ष दृष्टा के रूप में उपस्थित करना, अश्वत्थामा द्वारा वृद्ध याचक का वध, वृद्ध याचक की प्रेतकाया को ही 'हीरा' नामक व्याध के रूप में प्रस्तुत करना, कृपाचार्य का स्वेद-जल से अश्वत्थामा को सेनापति पद पर अभिषिक्त करना, तथा अश्वत्थामा द्वारा पाण्डव-योद्धा के भ्रम से संजय का गला दबोचा जाना जैसे प्रसंग प्रख्याताश्रित उत्पाद्य होने से मिश्र हैं। नाटककार ने प्रख्यात कथा-सूत्रों में अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा के संपुट से तनिक परिवर्तन कर यथेष्ट नाटकीय वातावरण

1- दे0 'अन्धायुग' - पृ0 6

की सृष्टि की है। वस्तुत: प्रस्तुत गीति-नाट्य में नाटकीय रस-औत्सुकता, प्रकर्षता या प्रभावोत्पादक वस्तु-नियोजना का मुख्य आधार तथाकथित उत्पाद्याश्रित एवं मिश्र कथा-वस्तु ही है।

डा0 भारती जी आधुनिक जन-संवेदना के भावुक कवि हैं। साथ ही वे गत्यात्मक वातावरण के एक ऐसे सिद्धहस्त चितेरे हैं कि उनकी कल्पनात्मक प्रसंगोद्भावनाएं भी अंततोगत्वा उनकी लेखनी को छूकर यथार्थ से अधिकाधिक मेल स्थापित कर लेती हैं। यही कारण है कि 'अन्धायुग' की प्रत्येक घटना-वस्तु यद्यपि प्रख्याताश्रित हैं किन्तु उनकी नींव पर निर्मित प्रसंगोदभावनाएं यथार्थपरक अनुभूतियों से सम्पृक्त होने से जहां एक ओर पौराणिक कथा-सूत्रों की सार्थकता को आरक्षित रखती हैं वहीं वे अपने प्रतीकात्मक रूप में सामयिक युग बोध को भी उजागर कर सकी हैं। तथाकथित उभयात्मक वस्तु-नियोजना की सम्यक् प्रेरणा की ओर संकेत करते हुए स्वयं डा0 भारती जी ने यह स्वीकार किया है कि -"जिस नये राग-बोध को लेकर हिन्दी की नई कविता अग्रसर हो रही है व्यास उसके सबसे निकट पड़ते हैं। उन्होंने प्रथम बार मनुष्य को उसके समग्र परिवेश में आंका था और विस्तृत किन्तु जटिल युग-पीठिका में मनुष्य के राग-द्वेष का एक विराट मानव-चित्र समुपस्थित किया था। ----- मानवीय सत्य किसी विशेष बिन्दु पर 'एक' और अविभाज्य होता है। उसे अतीत, वर्तमान और भविष्य में नहीं बांटा जा सकता। अतीत, वर्तमान और भविष्य एक दूसरे में प्रसुप्त हैं और इस प्रकार समस्त इतिहास एक प्रकार से समकालीन इतिहास है। काव्य मानवीय सत्य और ऐतिहासिक परिवेश को उसी विशेष बिन्दु पर पकड़ने का प्रयास करता है।"[1] वस्तुत: उक्त उद्धरण की दृष्टि से देखा जाय तो विदित होता है कि द्वितीय महायुद्धोपरान्त जनित राष्ट्रीय एवं

1- धर्मवीर भारती 'विशेष' सम्पा0 डा0 जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'नयी कविता', अंक-2, 1955, पृ0 49।

अन्तर्राष्ट्रीय विघटनात्मक मूल्य बोध या सांस्कृतिक ह्रासमूलक अनैतिक प्रवृत्तियां एवं उनकी प्रतिक्रियाओं के परिणाम स्वरूप जन-जीवन में व्याप्त क्षोभ, संशय, द्वन्द्व व अनेकानेक तनाव ग्रस्त मनस्थितियों की उपस्थिति एक प्रकार से महाभारतीय परिवेश का पर्याय किंवा उसका आधुनिक संस्करण प्रतीत होती है। अत: यह कहा जा सकता है कि 'अन्धायुग' का कथानक मानवीय सत्य एवं उसके ऐतिहासिक परिवेश के एक अविभाज्य बिन्दु के आधार पर समग्र रूप से मनुष्य के बाहरी जीवन की अपेक्षा उसके अन्तर्जीवन की सूक्ष्म, घटनाओं, परिस्थितियों वातावरण एवं पात्रों के मानसिक भाव-बोध के नाटकीय विश्लेषण की भंगिमा पर आधारित है।"

इसकी कथा-वस्तु निम्नांकित शीर्षकान्तर्गत पांच अंकों में विभक्त है- यथा-

स्थापना	(अन्धायुग)
पहला अंक-	कौरव नगरी
दूसरा अंक-	पशु का उदय
तीसरा अंक-	अश्वत्थामा का अर्द्ध सत्य
अन्तराल-	(पंख, पहिये और पट्टियां)
चौथा अंक-	गांधारी का शाप
पांचवां अंक-	विजय : एक क्रमिक आत्महत्या
समापन : - - - -	प्रभु की मृत्यु

~~[illegible]~~ बीच में अन्तराल-प्रयोग है। शीर्षक प्रतीकात्मक होने से सूक्ष्म कथा-सूत्रों को अभिव्यंजित करते चलते हैं। इसमें 'स्थापना' से लेकर 'समापन' तक के सभी कथा-सूत्रों का स्वाभाविक विकास हो पाया है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक कथा में संगठन है, कहीं भी कोई तार टूटता नहीं दिखाई देता।"[1]

1- डा0 हरिचरण शर्मा, 'नयी कविता : नये धरातल' - पृ0 217

इसकी समस्याएं भी 'कनुप्रिया' की भांति ही सार्वदेशिक व सार्वकालिक भाव-बोध के आयामों को उद्घाटित करती है। भाव-बोध, प्रतिपाद्य विषय या प्रमुख उद्देश्य कीदृष्टि से इसकी समस्त कथा-वस्तु का संकेत निम्नांकित पंक्तियों में देखा जा सकता है जिसमें कृतिकार की आशावादी या मानवतावादी भावना का स्वर भी ध्वनित है। यथा-

'हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अंधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है
है दास वृत्ति उन दोनों वृद्ध पहरियों की
अंधा संशय है लज्जाजनक पराजय है
पर एक तत्व है बीज रूप स्थित मन में
वह अर्द्ध सत्य है से ब्रह्मास्त्रों के भय से
मानव भविष्य को हरदम रहे बचाता
अंधे संशय दासता पराजय से।[1]

अतएव, इससे कृतिकार यह कथन कि 'यह कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से की पुष्टि भी हो जाती है।

रंगमंच एवं अभिनयता :

प्रस्तुत गीति-नाट्य वस्तुत: रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखा गया है। जैसा कि स्वयं डा0 भारती जी ने स्वीकार किया है कि - 'मूलत: यह काव्य रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखा गया था। यहां पर उसी रूप में छापा जा रहा है।"[2]

1- अंधायुग- पृ0 132

2- अंधायुग- भारती : 'निर्देश' पृ0 ७

यथेष्ट प्रभावया वातावरण की सृष्टि के लिए दृश्य-काव्य या नाटकों में रंगमंचीय संकेतों की नियोजना की जाती है। इसके लिए नाटककार को अत्यंत हीसजग रहना पड़ता है क्योंकि नाटक में प्राय: रंगमंचीय कथा-वस्तु को ही अभिनीत किया जाता है और जो मंचीय नहीं हैं उनके लिए आवश्यक उपकरणों की नियोजना करनी पड़ती है। 'नाटक के अभिनय में केवल निर्देशक और पात्रों की कला ही सब कुछ नहीं होती, नाटक का विषय, मूल भाव और शैली भी रंगमंच की प्रस्तुतिकरण विधि को प्रभावित करते हैं।"[1]

डा० भारती जी ने इस नाटक में रंगमंचीय व्यवस्था का पूरा-पूरा विवेक बरता है इसमें प्रयुक्त आवश्यक पर्दे, रंग-परिपार्श्वों एवं दृश्य-बन्धों की योजना से मंचीय-विधान को सरल, सुस्पष्ट एवं अभिनयीकरण के सर्वथा उपयुक्त बनाने की चेष्टा की गई है। दृश्य-परिवर्तन के लिए 'कथा-गायन' का प्रयोग एक 'नेरेटर' या 'कथालोचक' का रूप प्रस्तुत करता है जो यथावसर विषय वस्तु की व्याख्या प्रस्तुत कर नाटकीय वस्तु में प्रभावोत्पादक वातावरण की सृष्टि करता चलता है। इसके सोद्देश्य प्रयोग की ओर संकेत करते हुए नाटककार ने कहा है कि 'कथानक की जो घटनाएं मंच पर नहीं दिखाई जातीं, उनकी सूचना देने, वातावरण की मार्मिकता को और गहन बनाने या कहीं-कहीं उसके प्रतीकात्मक अर्थों को भी स्पष्ट करने के लिए यह कथा-गायन की पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। कथा-गायक दो रहने चाहिए, एक स्त्री और एक पुरुष।---कथा-गायन के साथ अधिक वाद्य-यंत्रों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। गायक-स्वर ही प्रमुख रहना चाहिए।"[2]

1- शोध और समीक्षा : डा० सुरेश चन्द्र गुप्त, पृ० 49

2- अंधायुग- निर्देश, पृ० 6

प्रस्तुत नाटक में प्राय: अंकों के प्रारंभ एवं अंत में तो कहीं-कहीं मध्य में कथा-गायन पद्धति का प्रयोग किया गया है। उक्त पद्धति लोक-नाट्य परम्परा से अनुगृहीत की गई है। अत: लेखक के मतानुसार 'मंच विधान को थोड़ा बदल कर यह खुले मंच वाले लोक-नाट्य में भी परिवर्तित किया जा सकता है। अधिक कल्पनाशील निर्देशक इसके रंगमंच को प्रतीकात्मक भी बना सकते हैं।"[1] वैसे तो यह नाटक दृश्य-विभाजन के दोषों से सर्वथा मुक्त है किन्तु जहां कहीं विशेषकर इसके चतुर्थ अंक में पुन: पुन: दृश्य-परिवर्तन की प्रक्रिया दृष्टिगत होती है जिससे मंचीय-सुविधा एवं नाटकीय अभिनेयता में कुछ बाधा उपस्थित हो जाती है। परंतु ऐसे स्थलों को कि जहां विचारोत्तेजक दृश्यों, सनसनीपूर्ण घटनाओं एवं क्रिया-व्यापारों की श्रृंखला है, वहां उन्हें ध्वन्यात्मक, प्रतीकों-बिम्बों, वार्तालाप की भाव-गर्भित टोनों, व्यंग्योक्तियों, स्वगतोक्तियों, व आकाशवाणी जैसी दृश्य-बोधक ध्वनियों के माध्यम से प्रस्तुत करने पर रंगमंचीय प्रभाव में तो अभिवृद्धि होती ही है साथ ही उनसे रेडियो-रूपान्तर की सम्भावना भी सरल हो जाती है। उदाहरणतया वन में फैलती हुई प्रचण्ड दावाग्नि[2], धधकते हुए बरगद का गांधारी और धृतराष्ट्र पर टूट गिरना[3], कौरव -नगरी पर गृद्धों के बादल का सन्नाटा[4], रथों की घरघराहट और घोड़ों की टापों[5] जैसे दृश्यों को ध्वनि-प्रभावात्मक व्यवस्था से प्रस्तुत कर मंचीय अभिनय को सरल बनाया जा सकता है।

यही कारण है कि इसका कई बार रेडियो-रूपान्तर भी बड़ी सफलता से के साथ प्रस्तुत किया गया है। डा० भारती जी ने 'पश्यन्ती' में 'अन्धायुग' के

1- वही- 'निर्देश' पृ० 7

2- वही- पृ० 112

3- ,, पृ० 114

4- ,, पृ० 14

5- ,, पृ० 71

सफल रेडियो-रूपान्तर और इसकी सफल मंचीयता के सम्बंध में कहा है कि - 'अन्धायुग' की मूल पाण्डुलिपि समस्त मंच-संकेतों के साथ दृश्य-काव्य के रूप में ही लिखी गयी थी। आकाशवाणी के उपयुक्त वह हो सकती है इसका दूर-दूर तक ख्याल नहीं था। एक दिन जब श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने प्रस्तावित किया कि इसे वे आकाशवाणी पर प्रस्तुत करना चाहते हैं और स्वयं इसका निर्देशन करेंगे तो मुझे आश्चर्य हुआ।--- जिस दिन रेडियो पर पहली बार 'अंधायुग' प्रसारित हुआ, तमाम लोग रेडियो खोले बैठे थे और मैं अपनी साइकिल लिए अंधेरी सड़कों पर भटक रहा था।---लेकिन साढ़े ग्यारह बजे रात को पता चला कि 'अंधायुग' अप्रत्याशित रूप में प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ।"[1]

यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि डा0 भारती जी ने 'अंधायुग' को रंगमंचीय अभिनेयता प्रदान करने के लिए कोष्टान्तर्गत यत्र: तत्र: आंगिक वाचिक, सात्विक और आहार्य अभिनय सम्बंधी रंग-संकेत भी दिए हैं। उक्त काव्य-नाटक में अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष की स्थितियों की प्रचुरता होने के कारण प्राय: पात्रों की भाव-मुद्राओं व चेष्टाओं का निर्देशन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। आहार्य-अभिनय कम ही है। इसका विस्तृत अध्ययन आगे के अध्याय में यथास्थान किया जाएगा।

अत: उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहना युक्ति संगत होगा कि मंच और रेडियो के से दोनों ही क्षेत्रों में 'अन्धायुग' की अभिनेयता असंदिग्ध है।

1- पश्यन्ती : डा0 भारती : पृ0 13, 14

पात्र-सृष्टि :

'अंधायुग' एक प्रतीकात्मक नाट्य-काव्य कृति है। इसके पात्र अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हुए भी आधुनिक ह्रासोन्मुख सभ्यता के संदर्भ में आज के विघटित, कुण्ठित एवं अनेकानेक विकृतियों से ग्रसित व्यक्ति के मनोभावों, प्रवृत्तियों तथा मूल्य-बोधों का प्रतिनिधित्व करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इस दृष्टि से ये पात्र मानव मन की विकृतियों एवं विभिन्न मनोभावों के व्यंजक होने से प्रतीकात्मक एवं अन्तर्द्वन्द्व -प्रधान हो गये हैं। 'पात्रों की तथाकथित प्रतीकात्मकता ही पौराणिक पात्रों को आधुनिक जीवन के गूढ़ अर्थों तक पहुंचा देती है -"'अन्धायुग' एकप्रतीकात्मक दृश्य-काव्य है। 'अन्धायुग' के अधिकांश पात्र निश्चित ऐतिहासिक चरित्र होते हुए भी विशिष्ट मानसिक प्रवृत्तियों, दृष्टिकोणों एवं अन्तर्ग्रंथियों के प्रतीक हैं। यह प्रतीकत्व उनके चरित्र की स्वतंत्रता, को नष्ट नहीं करता वरन् उन्हें एक विराट मानवीय प्रासंगिकता प्रदान करता है, जिसके कारण महाभारत की कथा के एक अंश का पुनर्कथन मात्र न रहकर 'अंधायुग' मानव-मन के अन्तर्जगत का महाकाव्य बन गया है।"[1] इसी प्रकार 'अंधायुग' के प्रतीकात्मक पात्रों का महत्व प्रतिपादित करते हुए अनेक विद्वान आलोचकों ने अपने विभिन्न मत प्रदर्शित किये हैं - 'अंधायुग' में चरित्र-चित्रण वैचारिक कोटि का है। चरित्र मानवीय अस्तित्व की अपेक्षा विशेष विचार-धारा अथवा विद्वेष कुण्ठाओं के प्रतीक अधिक हैं। बीसवीं सदी की पतनोन्मुख संस्कृति के प्रतिनिधि यहां उपस्थित हैं।"[2] इसके प्रतीकात्मक पात्र हैं अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, गान्धारी, विदुर,

---

1- सृजन के आयाम : (प्र0 सं0-1961) ज्वालाप्रसाद खेतान : पृ0 153

2- मनोहर वर्मा, आलोचना(जनवरी 1956) पृ0 118

युयुत्सु, संजय, युधिष्ठिर, कृष्ण प्रहरी तथा वृद्ध याचक आदि। 'अश्वत्थामा', 'अन्धायुग' का सबसे सशक्त प्रतीकात्मक प्रमुख पात्र है। 'साहित्यिक क्षेत्रों में नीत्शे और सार्त्र आदि ने जिस मनुष्य की कल्पना की, अश्वत्थामा उसी का प्रतीक है और राजनीतिक क्षेत्र में अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित युद्धवादियों, प्रतिहिंसक पशुत्व और न्यूराटिक युद्ध-लिप्सा तथा महाभारत-युग का व्यक्ति विशेष न होकर उस संपूर्ण वर्ग का प्रतीक है जिसकी आत्मा ने युद्ध के संत्रास की प्रत्यक्ष झेलकर अचिन्त्य वेदना झेली है।"[1] प्रस्तुत कृति में साम्राज्यवादी दुष्परिणामों से आक्रान्त अश्वत्थामा की प्रतिक्रियावादी हिंसात्मकएवं प्रतिशोधपरक चेतना के मूल में तथाकथित सार्त्र की नास्तिक अस्तित्ववादी विचारधारा को देखा जा सकता है। दुर्भिसन्धि और षड्यन्त्रों से परिचालित युद्ध में उसके पिता की क्रूर हत्या से उसका आहत अहं उसके रोम-रोम में प्रतिशोध की अग्नि ज्वाला फूंक देता है अत: वह उद्घोषित करता है -

'जीवित रहूंगा मैं
अन्धे बर्बर पशु सा।
+ +
वध, केवल वध, केवल वध,
अन्तिम अर्थ बने
मेरे अस्तित्व का।"[2]

माता गान्धारी अन्ध मनोवृत्तियों का प्रतिनिधि प्रतीक पात्र है। वह अपने पुत्रों के प्रति अन्धी ममता के वशीभूत होने के कारण उसमें बाह्य जगत् के यथार्थपरक सत्य को बौद्धिक विश्लेषण द्वारा परखने की दृष्टि नहीं है। आदि से अन्त तक

1- सुरेश गौतम 'अन्धायुग' : एक सृजनात्मक उपलब्धि' (1973) पृ0 70

2- अन्धायुग : भारती, (षा0 सं0-1973) पृ0 38

उसकी इसी अन्धी मातृत्व भावना ममान्तिक व्यथा एवं आक्रोश व प्रतिशोध की अदम्य कांक्षा वृति के रूप में प्रस्फुटित होती रहती है। कौरव वंश के विनाशोपरान्त दुर्योधन के अस्थि-शेष को देखकर कृष्णा को दिया गया उसका अभिशाप उसके इसी आक्रोश -दग्ध हृदय का व्यंजक है।

धृतराष्ट्र मोहान्धता और विवेकहीनता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार इस कृति में युधिष्ठिर का चित्रांकन भी विवेकहीनता, अन्धी प्रवृतियों से चालित साम्राज्यवादी स्वार्थ-लोलुपता की प्रतीकात्मक पृष्ठभूमि में किया गया है। तथाकथित तथ्य की प्रतीति के लिए प्रथम अंक की आरम्भिक पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है।
+ + +
यह अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है।
दोनों पक्षों में ही खो विवेक ही हारा।
दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन
भय का अन्धापन, ममता का अंधापन
अधिकारों का अंधापन जीत गया[1]

कृष्णा की प्रतीकात्मकता मर्यादा, विवेक, जीवन-मूल्य और आस्था की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित की गई है। इस तथ्य को नाटककार ने निम्न रूपेण अभिव्यक्त किया है -

---

1- वही - पृ0 13

"है एक बहुत पतली डोर मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त।"[1] यद्यपि समस्त कृति में कृष्ण का अवतरण परोक्ष रूप में दृष्टिगत होता है। किन्तु नाटककार ने इन्हें ही कृति का केन्द्रीय पात्र मानते हुए कहा है - "इसीलिए कृष्ण जो मानवीय आचरण की जटिलतम मर्यादा के मर्मज्ञ थे, इस दृश्य-काव्य के केन्द्रस्थ पात्र हैं जो सभी पात्रों और परिस्थितियों पर छाये रहते हैं, यद्यपि शिल्प में इतना कौशल अवश्य बरता गया है कि वे सशरीर मंच पर नहीं आते।"[2] कृष्ण के व्यक्तित्व में अंधकार एवं प्रकाश, आसक्ति एवं अनासक्ति आदि अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियों के विनियोग द्वारा नाटककार ने जहां एक ओर उनके गीता-सम्मत ऐतिहासिक चरित्र की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है वहीं आधुनिक संकटापन्न स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में युद्धीय विडम्बनाओं से आक्रान्त आज के मानव की जटिल नियति से उसके स्वयं द्वारा मुक्ति के प्रयास को दर्शाकर मनुष्य स्वयं अपने हित-पथ का, मानव-भविष्य एवं मानवीय मूल्यों का निर्माता है इस तथ्य को भी बड़े ही सांकेतिक परिवेश में उभारने की चेष्टा की है। इसलिए 'अंधायुग' के पू प्रभु कृष्ण का कथन है -

'मेरा दायित्व ही स्थिर रहेगा
हर मानव मन के उस वृत्त में
जिसके सहारे वह
सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन-निर्माण करेगा पिछले ध्वंसों पर
मर्यादामुक्त आचरण के---
----जीवित और सक्रिय हो उठूंगा मैं बार-बार।"[3]

1- वही- पृ0 12
2- सम्पा0 डा0 जगदीश गुप्त, तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविता, अंक-दो, 1965, पृ0 50
3- अंधायुग- पृ0 126, 130

इसी प्रकार दो प्रहरी दास-वृत्ति एवं जन-साधारण व्यक्ति की अभाव व शोक-संतप्तता ग्रस्त भावना के जीवन्त प्रतीक हैं। संजय आज के व्यक्ति की निरर्थकता का प्रतीक है। युयुत्सु, वृद्ध याचक, व्यास आदि इसी प्रकार अपना प्रतीकात्मक अस्तित्व रखते हैं। अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि डा0 भारती जी ने आज की राजनीतिक विडम्बनाओं व महायुद्धों के दुष्परिणामों से पीडित आज के व्यक्ति की परिवर्तित विचार संहिता के साथ ही उसके तथाकथित विसंगतिपूर्ण परिवेश में आचरित नितांत निबंध्य कर्तव्याकर्तव्यों की बौद्धिक किन्तु काव्यात्मकता से युक्त मीमांसा की है। इस संदर्भ में उनके पात्र आज के हीनता ग्रंथि ग्रस्त लघु व विघटित मानव से लेकर अपनी मुक्ति के स्वतंत्रता पूर्ण निर्वाचण के क्षेत्र में प्रवृत्त होकर आदर्श और यथार्थ की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए युग-सापेक्ष्य पृष्ठभूमि में अपनी गरिमा व रक्षा के अनुकूल एक नूतन मानव के सर्जक की सुखद कल्पना भूमि तक अग्रसर होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुत: यह वह भूमि है जहां व्यक्ति व्यक्ति न रहकर एक आदर्श मानव या महामानव तक की गरिमा को आत्मसात् कर सकता है।

'अंधायुग' के नाटकीय पात्रों की दूसरी विशेषता यह है कि डा0 भारती जी ने अपने पात्रों को सजीव रूप प्रदान करने के निमित्त उनके चरित्रों को अन्तर्द्वन्द्व की सूक्ष्म रेखाओं में उभारकर चरित्रांकन की सटीक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि-कुशलता का परिचय दिया है। 'लगभग सभी प्रमुख पात्रों के मानव की अन्तश्चेतना तथा उसके मन:व्यापारों मनोभावों, अतृप्तेच्छाओं एवं मानसिक घात-प्रतिघातों का गतिमय एवं द्वन्द्वात्मक चित्रण किया गया है। मनो-वैज्ञानिक दृष्टि से 'अंधायुग' के पात्रों की वृत्ति अन्तर्मुखी है, जो मानसिक जटिलताओं, अनैक्य, आन्तरिक भेदभाव, असन्तोष, घातक तृष्णा, नैराश्यपूर्ण आशंकाओं, मनोविकृति, प्रतिशोध, ग्रंथि और अहंवाद से ओतप्रोत हैं।"[1]

1- आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन- डा0 गणेशदत्त गौड़ (प0 सं0 1965) पृ0 362

श्री सुरेश गौतम जी ने अपनेलघु शोध-प्रबंध 'अंधायुग : एक सृजनात्मक उपलब्धि' में तथाकथित मनोवैज्ञानिक आलोक में युगीय मनोविज्ञान की रेखाओं के आधार पर अन्धायुग के समस्त पात्रों का मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।[1] उदाहरण के लिए धृतराष्ट्र एवं माता गान्धारी के अन्तर्मुखी-प्रेरणा सापेक्ष एकांगी दृष्टिकोण को युग की निम्नांकित अवधारणा के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया जा सकता है। युंग नेलिखा है - 'उसके सम्बंध में बहिर्मुखी दृष्टिकोण का यही कहना होगा कि वास्तविकता का उसके लिए कोई अस्तित्व नहीं है। वह निष्फल बिम्ब-निर्माण प्रवृत्ति के वशीभूत हो जाता है। अन्तर्मुखी प्रेरणा, अन्तर्ज्ञान से प्राप्त उन बिम्बों को ग्रहण करती है जो स्वत: चेतन मन के जातिगत आधारों से उत्पन्न हुए हैं।"[2] जन्मान्ध धृतराष्ट्र का विवेक या ज्ञान भी केवल अन्तर्जगत की सीमा तक ही परिमित था। बहिर्जगत के यथार्थ का बोध तो उन्हें अपने वंश की विनाश-लीला के उपरान्त ही हो पाता है -

आज मुझे भान हुआ।
मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है।
+ +
सब कुछ बह गया
मेरे अपने वैयक्तिक मूल्य
मेरी निश्चिन्त किन्तु ज्ञानहीन आस्थाएं।"[3]

1- दे0 'सुरेश गौतम 'अंधायुग' : एक सृजनात्मक उपलब्धि(आवृत्ति 1973)पृ0 96-107तक।

2- C.G.Jung: Psychological Types: Page-507

- सृजन के आयाम-ज्वालाप्रसाद खेतान-पृ0 162

3- अंधायुग : पृ0 21

इसी प्रकार माता गान्धारी भी स्वात्म प्रेरित व्यक्ति-विवेक के आधार पर ही बहिर्जगत की नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति व कृष्णार्पण सी मनोवृत्तियों को झूठे आडम्बर मात्र की संज्ञा से अभिहित करती हुई दृष्टिगोचर होती है। ऐसे पात्र जो प्राय: स्व की अन्त:प्रेरणाओं से परिचालित है अपने आदर्शों को ही जीवन का चरम सत्य समझ कर चलते हैं। इनके लिए बाहरी नीति या मर्यादाओं का कोई मूल्य महत्व अपनी सार्थकता नहीं रखता। ऐसे पात्रों में व्यक्तिगत असाधारणता के लक्षणों को सहज ही देखा जा सकता है।

इन पात्रों की तीसरी विशेषता यह है कि प्राय: ये पात्र हैं तो घोर अनास्थावादी। किन्तु इनकी अंतिम परिणति मानव-मूल्यों की दृढ़ आस्था के रूप में होती है। आस्था ही इस कृति का मूल प्रतिपाद्य है, फल है। डा0 भारती जी मूलत: मानव-मूल्यों की आस्था के साहित्यकार हैं। उन्होंने आस्था को मानव-मूल्य के रूप में ही गृहीत किया है। वे केवल कोरी आस्था के उपासक नहीं हैं, इसीलिए आस्था को उसके विपरीत परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने का प्रयास किया गया है। इसी तथ्य को लेकर विद्वान समालोचकों का प्राय: मत रहा है कि -"'अन्धायुग' के चरित्र निश्चित ही अन्धे और कुण्ठाग्रस्त हैं किन्तु उनको एक सूत्र में बांधकर चलनेवाली कवि की लेखनी में एक संयत, मर्यादा, नैतिकता का आग्रह और आशावादी मानवता की झांकी मिलती है। विक्षिप्त एवं उत्पीड़ित कलाकार आशा, संयम, विश्वास---"[1] तथा उसके चरित्र किसी न किसी रूप में अन्धे, पथभ्रष्ट निष्क्रिय और आत्महारा हैं किन्तु लेखक ने इसी कुण्ठा, निराशा और अन्धेपन से सत्य की खोज की है।"[2] कृति के अंत में घोर आस्थावादी अश्वत्थामा और माता गान्धारी आदि पात्रों का हृदय-

---

पृ0
1- सं0 नंददुलारे बाजपेयी, आलोचना (अक्टूबर 1956) पृ0 118

2- छायावादोत्तर हिन्दी गद्य-साहित्य : डा0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ0 155-156

परिवर्तन करवा कर उनके माध्यमसे कृष्णार्पण की भावना को प्रश्रय देना वस्तुत: तथाकथित मानव-आस्था की मूल्य-प्रतिष्ठा की ओर ही कवि का संकेत है। चूंकि प्रस्तुत कृति में कृष्ण विवेक, मानव-मूल्यों और दायित्व-पालन की मानवतावादी पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस संदर्भ में श्री सुरेश गौतम जी का कथन है कि- 'कवि की अजेय और अटूट आस्था सुदृढ़ मानवतावाद पर स्थित है। ये कवि के ऐसे मानदण्ड हैं जिसके समक्ष अश्वत्थामा और युयुत्सु जैसे सशक्त चरित्रों को भी घुटने टेकने पड़ते हैं।[1]

अत: ऊपर विवेचित तथ्यों के आलोक में अंधायुग के पात्रों की प्रकृति को देखने पर यह विदित होता है कि उक्त पात्र मूलत: विघटित, कुण्ठित, अनास्थावादी संशय एवं जटिलतर विकृतियों से ग्रस्त होने से पाश्चात्य त्रासदीयपरक पात्रों के सर्वथा निकट हैं किन्तु नाटककार ने उन्हें आस्थावादी वैचारिक धरातल पर मोड़कर एक प्रकार से भारतीय रस-पद्धति के साथ समन्वय की विराट चेष्टा का प्रयास भी किया है।

डा० भारती जी ने नाटकीय पात्रों की चारित्रिक रूप-रेखाओं को उद्घाटित करने के लिए मुख्यत: चरित्र-शिल्प की दो विधियों से काम लिया है।-(1)प्रत्यक्ष और (2) परोक्ष। प्रत्यक्ष विधि में स्वयं पात्रों की उक्तियों, स्वगत कथनों और क्रिया-कलापों के द्वारा उनके चरित्र को अंकित किया जाता है तथा परोक्ष शैली में विभिन्न पात्रों की उक्तियों के द्वारा एक दूसरे के चरित्र की व्यंजना की जाती है। परोक्ष शैली में नाट्यकार को अपनी ओर से चरित्रों के विषय में कुछ भी कहने का अवसर नहीं मिलता। तथापि किन्हीं विशेष पात्रों की चारित्रिक व्यंजना के लिए वह चरित्र-शिल्प की कोई न कोई विधि या तरीकों को ढूंढ ही निकालता है।

1- अन्धायुग : एक सृजनात्मक उपलब्धि - सुरेश गौतम- पृ० 102

'अंधायुग' में दो प्रहरियों का 'कथा-गायन' के रूप में किये गये प्रयोग से तथाकथित तथ्य की प्रतीति हो जाती है। वे टिप्पणीकार या समीक्षक-पात्र 'नेरेटर' की भांति अन्य पात्रों के विषय में अपनी राय या आलोचना प्रस्तुत करते हुए दृष्टिगत होते हैं। उदाहरणतया -

'थे भीम बुद्धि से मन्द, प्रकृति से अभिमानी
अर्जुन थे असमय वृद्ध, नकुल थे अज्ञानी
सहदेव अर्द्ध-विकसित थे शैशव से अपने
थे एक युधिष्ठिर
जिनके चिन्तित माथे पर
थे लदे हुए भावी विकृत युग के सपने[1]

इसी प्रकार अश्वत्थामा गान्धारी और विदुर आदि के संवादों और विचारों के द्वारा कृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं पर डाला गया प्रकाश भी परोक्ष शैली का ही रूप है। इसी प्रकार चरित्र-शिल्प की प्रत्यक्ष-विधि को भी नाट्यकार ने अनेक प्रकार के रंग-संकेतों के प्रयोगों द्वारा पुष्ट किया है। प्रस्तुत कृति में आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य्य अभिनय विषयक दिये गए कोष्कान्तर्गत विविध रंग-निर्देशनों से उक्त बात की पुष्टि की जा सकती है। प्रत्युक्त रंग-दर्शनों के माध्यम से दर्शक या पाठक न केवल विविध चरित्र-सम्पन्न पात्रों के भावों, अनुभावों, कार्य-कलापों व चेष्टा-प्रचेष्टाओं से अवगत होते हैं अपितु उनके मन में घटित सूक्ष्म वैचारिक क्रिया-प्रक्रियाओं से भी तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। किसी भी नाटक की पूर्ण सफलता का बीज उसके पात्रों द्वारा किये गये विभिन्न भावों या अवस्थाओं के अभिनय की कुशलतापूर्वक अभिव्यक्ति में ही निहित रहता है। इसीलिए नाटकों में वस्तु-शिल्प की अपेक्षा चरित्र-शिल्प का विशेष महत्व रहा है। चूंकि सफल चरित्रों की नियोजना

1- अन्धायुग- डा0 भारती-पृ0 105

के द्वारा ही नाटककार नाटकीय वस्तु को अभीष्ट रस-दशा तक ले जा सकता है। यही कारण है कि नाटककार ने अपने सफल पात्रों की सृष्टि के द्वारा ही महाभारतीय परिवेश पर आधारित पौराणिक कथा-वस्तु को आधुनिक युग-सापेक्ष्य भाव-भूमि के नवीनतम धरातल पर प्रस्थापित कर पर्याप्त सफलता का वरण किया है।

भाषा-संरचना एवं संवाद-योजना :

'अन्धायुग' पौराणिक कथा-सूत्रों के माध्यम से लिखा गया अधुनातम युग के नए मूल्यों पर आधारित प्रतीकात्मक दृश्य काव्य है। इसका अभिव्यंजना-शिल्प नाटककार की मौलिक एवं प्रौढ़तम प्रतिभा की पैनी शान पर चढ़ कर दृश्य काव्य की अभिनयात्मक व रंगमंचोपयोगी भाषा-शैली के साथ ही रेडियो नाटक के उपयुक्त ध्वनि-प्रभाव युक्त चित्रात्मक भाषा-सौंदर्य की आह्लादोत्पादक मार्मिक अभिव्यक्ति को भी पा सका है। नाट्य-भाषा की समृद्धि व श्री वृद्धि के लिए नाटककार ने प्राय: आधुनिक भाव-बोध के अनुरूप नये अर्थों से गर्भित भावपूर्ण प्रायोगिक शब्दावली का उपचयन किया है। तथापि जनानुकूल भाषा के प्रयोग का भी दृष्टिकोण अपनाया है। यही कारण है कि जहां उक्त नाटक में 'तनश्चार्य एवाभिजन हेतु :' 'कपट वेश धारणमेव महत्व हेतु :' जैसी संस्कृत की उक्तियों, व द्वन्द्वयुद्ध, श्वेतकेशी, अजानुबाहु सज्जित, जैसे संस्कृत के तत्सम शब्दों तथा दिव्य दृष्टि, ब्रह्मास्त्र, योगमाया, शिरस्त्राण जैसे प्राचीन वातावरण सापेक्ष शब्दों का बहुलता से प्रयोग दृष्टिगत होता है वहीं खुदा, पोशाकें, सुबह, खास जैसे उर्दू शब्दों, सपने बरस, पांच, सांवल जैसे तद्भव के से जन-बोध्य सुलभ सरल शब्दों की भरमार भी खटकती नहीं है। इसी प्रकार यथेष्ट प्रभाव की व्यंजना हेतु गाढ़े-गाढ़े, सूनी-सूनी, गली-गली जैसे दुहरे शब्दों, बचा-खुचा, टेढ़े-मेढ़े, चीर-फाड़ जैसे सहचरी शब्दों और अस्त-व्यस्त, अस्त्र-शस्त्र जैसे सम-तुकान्त सहयोगी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। नाट्यकार द्वारा प्रयुक्त इतिहास बदलना, धुरी से उतरना, मृत्यु के द्वार खोलना, अपने ही शाप की प्रथम समिधा होना जैसे नये मुहावरों का प्रयोग भी सम्बद्ध अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्ति के द्योतक हैं।

प्राय: काव्यात्मक अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए सजग प्रतिभा प्रवर कवि अपनी काव्य-भाषा में विविधात्मक बिम्बों, प्रतीकों, अलंकारों और लय तथा तुकों का साभिप्राय प्रयोग करता है। सामान्यतया काव्य-भाषा कि जिसका सम्बंध हृदय की रागात्मक अभिव्यक्ति से है अभिव्यंजना के इन्हीं तत्वों से अनुस्यूत होकर चिर-रमणीयता की अद्भुत शक्ति को पा लेती है। 'अंधायुग' काव्य-नाटक में किया गया विविधात्मक बिम्बों का प्रचुर प्रयोग उसकी भाषा को बिम्ब-प्रधान भाषा का रूप प्रदान कर देता है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए श्री कृष्ण सिंहलजी ने लिखा है - 'नाटक आरम्भ से अन्त तक कल्पना द्वारा निर्मित बिम्बों से भरा पड़ा है। स्थल-स्थल पर भावपूर्ण बिम्ब उभरते चलते हैं।'[1] जैसे -

'वाणी हो सत्य धर्मराज की
मेरी इस पसली के नीचे
दो पंजे उग आयें
मेरी ये पुतलियां
बिन दांतों के चोथ खायें
पायें जिसे।"[2]

डा० भारती जी ने इस नाटक में संज्ञा[3], सर्वनाम[4], विशेषण[5], क्रिया, क्रिया-विशेष[6] आदि भाषा केसभी अवयवों का प्रयोग बिम्बों के निर्माण हेतु किया है।

1- हिन्दी गीति-नाट्य : कृष्ण सिंहल : पृ० 120
2- अन्धायुग : डा० भारती- पृ० 38
3- यथा- 'अन्धड', 'ज्योतिबाण', 'फाड़ी'
4- यथा- 'वह आ रहा है कौन ?' 'हृदय विदारक स्वर में चीख उठे'
5- ,, सूना गलियारा' 'दहाड़ता हुआ समुद्र', 'पिघली आग'
6- माता खड़ी होती बाहें फैलायें', 'बाहें फैलाकर पशुवत घोर नाद किया'।

डा0 भारती जी ने प्राय: ऐन्द्रिय बिम्बों की सृष्टि के लिए आलंकारिक भाषा तथा सूक्ष्म भावों, अथवा विचार-गर्भित बिम्बों की सृष्टि के निमित्त प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया है। वस्तुत: भारतीय काव्य-शास्त्र के विभावन-व्यापार की दृष्टि से अलंकार और प्रतीक बिम्ब-विधान के ही साधक तत्व हैं। अस्तु, यहां नाटक में प्रयुक्त विविध अलंकारों तथा प्रतीकों की वैविध्यमयी प्रकृति पर विस्तारपूर्वक विचार न करके केवल उन पर दृष्टि संकेत ही किया जा रहा है।

अलंकार-योजना :

डा0 भारती जी नये कवियों में अग्रगण्य स्थान प्राप्त सिद्धहस्त कवि हैं। अत: जहां वे काव्य-परम्परा के किसी जीवन्त और प्रेरकरूप को ग्रहण करते हुए चलते हैं वहीं वे उसे नई अर्थवत्ता से गर्भित भी कर देते हैं। यही कारण है कि नई संवेदना को भाषा का नया मुहावरा प्रदान करने के लिए कहीं संजय से कहलवाया-

> 'लेकिन आज अंतिम पराजय के अनुभव ने
> जैसे प्रकृति ही बदल दी है सत्य की
> आज कैसे वही शब्द
> वाहक बनेंगे इस नूतन अनुभूति के ?"[1]

तो कहीं स्वयं अपने द्वारा ही प्रभु से प्रार्थना करते हैं -

> 'दो मुझे शब्द, दो रसानुभव, दो अलंकरण
> मैं चित्रित करूं तुम्हारा करुण रहस्य मरण।"[2]

1- अंधायुग- पृ0 30

2- वही- पृ0 121

इसमें शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों दोनों का प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में श्लेष और यमकादि अलंकारों का बहुत ही कम किंतु शोक, क्रोध, जैसे मनोभावों की घनीतम व्यंजना के लिए वीप्सा अलंकारों का प्रयोग बहुलता से हुआ है।[1] अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों के आधार पर उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोगाधिक्य मिलता है, उपमान योजना नितांत नवीन और मौलिक है। उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। इसी प्रकार अर्थालंकारों में विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण और ध्वननशीलता(आनो मेटो पोइया) आदि अलंकारों का प्रयोग भी पग पग पर दृष्टिगत होता है। यथा- 'नरभक्षी गिद्धों का भूखा बादल', 'भूखे हाथों से[2] नगर द्वार अपलक खुले ही हैं। 'करोड़ों यमलोकों की यातना कुतर रही है। मेरे मांस को[3], आदि उक्तियों में विशेषण-विपर्यय के साथ ही मानवीकरण अलंकार की स्वाभाविक और सुनियोजित योजना बड़ी ही सुंदर है। 'मैं हूं दण्डित, लेकिन मुक्त हूं तथा 'बादल नहीं हैं ये गिद्ध हैं'[4] में क्रमशः विरोधाभास और अपह्नुति अलंकार की सुंदर छटा दर्शनीय है।

प्रतीक -योजना :

डा0 भारती जी के 'मानव मूल्य और साहित्य' में साहित्य की महत्ता और सामाजिक उपयोगिता के संदर्भ में एक सजग साहित्यकार के युग-सापेक्ष दायित्वों के निर्वाह पर अधिक बल देते हुए यह अभिव्यक्त किया है कि 'बाह्य घटनाओं की अपेक्षा साहित्यकार का ध्यान सामाजिक व्यवस्था द्वारा उद्भूत जटिल रागात्मक स्थितियों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विषमताओं, विकृतियों तथा असन्तुलन पर

1- 'आह माता गान्धारी-----

2- माता, ओ माता।" - 'अन्धायुग, पृ0 115

2- अंधायुग, पृ0 16,38

3- वही- पृ0 28,123

4- वही- पृ0 129,16

केन्द्रित रहता है और वह उन्हीं का परिहार एवं परिष्कार करता है। कभी वह उसके लिए तात्कालिक नाम, स्थिति और पृष्ठभूमि ग्रहण करता है, कभी वह उसी को पौराणिक और काल्पनिक देशकाल और पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है, और कभी वह उसके लिए अप्रस्तुत प्रतीकों और संकेतों का आश्रय लेता है। रसानुभूति और सौंदर्यबोध उसके माध्यम हैं और युग, काल एवं स्थितियों के अनुसार जैसी भी जटिलताएं होती हैं, वैसी ही सूक्ष्म तथा अप्रत्यक्ष रीति से वह अपना कार्य करता है।"[1] 'अंधायुग' में भी डा० भारती जी ने साहित्यकार की तथाकथित युगोचित दायित्व-दृष्टि से ही काम लिया है। इसीलिए वर्तमानकालीन युद्धोत्तर स्थितियों से उद्भूत विभीषिकाओं और विघटन-टूटन ग्रस्त वातावरण को अतीत के प्रतीकात्मक आवरण के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इस दृष्टि से 'अंधायुग' में वर्णित कुरुक्षेत्र की दिशा में उड़नेवाले नरभक्षी गृद्धों, का प्रसंग, गदा-युद्ध में दुर्योधन की पराजय, युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य से द्रोणाचार्य का वध और उससे उत्पन्न अश्वत्थामा की हिंसात्मक लीला के प्रसंग तथा पांचवें अंक में अमांगलिक प्रसंगों की योजना आदि कतिपय ऐसे ही प्रतीकात्मक प्रसंगों की उद्भावना की गई है। इसी प्रकार प्रतीकात्मक पात्रों और विशिष्ट अर्थगर्भित शब्द-प्रतीकों के प्रयोग में कवि-नाटककार को आशातीत सफलता मिली है। प्रतीकात्मक प्रतीकों पर विचार किया गया है। शब्द-प्रतीकों की दृष्टि से 'अंधों से शोभित था युग का सिंहासन' 'दो बुझती लपटें', 'ज्योति बुझ रही है' 'घायल कटा पंख', 'अंध-गह्वर' और 'अन्धे बर्बर पशु' जैसे प्रतीकाश्रित शब्दों का प्रयोग क्रमशः मोहान्ध और विवेक-शून्य शासकों, धृतराष्ट्र और गांधारी, 'विवेक', 'घृणा-भाव' 'अवचेतन मन' और 'अहं' के अर्थ में हुआ है।

1- मानव मूल्य और साहित्य : डा० भारती : पृ० 15-153

प्रस्तुत प्रतीक-योजना जहां अमूर्त अथवा सूक्ष्म भावों और विचारों को केवल मूर्त या स्थूल रूप ही प्रदान नहीं करती वरन् यथेष्ट वातावरण-निर्माण करती हुई कथा-वस्तु की आवश्यक गति और विस्तार देने में भी अत्यंत सहायक हो सकी है।

संवाद-योजना :

संवाद नाटकीय अभिव्यक्ति का आवश्यक अंग है। नाटक में वे ही संवाद सफलता का वरण कर सकते हैं जिनमें वक्ता की मनोस्थिति के अनुकूल स्वाभाविकता, कथा-वस्तु में विस्तार और मनोहारिता का समावेश तथा चरित्र को व्यक्त करने की सम्यक शक्ति विद्यमान हो। वस्तुत: संवादों की इन्हीं अर्थवतात्मक शक्ति में मंचोपयुक्तता सन्निहित रहती है। अत: नाटककार को संवादों की मंचोपयुक्तता के गुण उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रकार से सतर्कता पूर्ण उद्योग साध्य प्रयोग करने पड़ते हैं। इसी तथ्य के संदर्भ में यदि हम श्री सुरेश गौतम जी के शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं - "भारती ने मनोवेगों और मन: स्थितियों की तीव्र व्यंजना की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए अल्प-विस्तार, वाक्य-विन्यास की संक्षिप्तता, प्रश्नवाचक उक्तियों, विस्मयादि बोधक वक्तव्यों आदि को माध्यम रूप में ग्रहण किया। ---'अंधायुग' के संवाद गत्वर, प्राणवान और अपने अन्दर सशक्तता को छिपाए हुए हैं। 'अंधायुग' के पट-परिवेश में व्याप्त सर्वत्र अनास्था, कुण्ठा, शोक और आक्रोश के अनुरूप ही कहीं संवाद संक्षिप्त होकर स्वाभाविकता का परिचय देते हैं।---कथोपकथन को सशक्तता और समता प्रदान करने के लिए कवि ने कहीं तो शब्द-विशेष, शब्द-समूह अथवा पंक्ति विशेष को आश्रय बनाया और कहीं सूक्ति गाम्भीर्य के भावाविष्ट उक्तियों का श्रृंगार किया। तो कहीं अर्थ गर्भ मौन को मानदण्ड बनाकर कुछ विशेष स्थलों पर भावावेगों को तीव्र और सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए उक्तियों को अपूर्ण ही छोड़ दिया।"[1] यथा-

---

1- अंधायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि- सुरेश गौतम-पृ0 129

'संजय नहीं, मुझसे सुनो ---

---- स्त्रियां जहां थीं वहीं कुचल गईं ---

तथा- बाधा मत डालो विदुर

संजय फिर------"[1] इसी प्रकार पात्रों के आन्तरिक भावावेगों के उतार-चढ़ाव की गति के आधार पर संवादों में विविध लयों और तुकों का प्रयोग किया गया है। 'संवाद मुक्त छन्दों में है और अन्तराल में कितनी प्रकार की ही छन्द-योजना से मुक्त वृत्तगन्धी गद्य का भी प्रयोग किया गया है।"[2] पात्रों की मन: स्थितियों के अनुकूल मुक्त छंद की लय और टोन में अंतर आ गया है। डा० भारती जी ने इस सम्बंध में कहा है - 'कुछ स्थलों को अपवादस्वरूप छोड़ दें तो प्रहरियों का सारा वार्तालाप एक निश्चित लय में चलता है जो नाटक के आरम्भ से अन्त तक लगभग एक सी रहती है।"[3] प्राय: विविध लयों पर आधारित मुक्त-छंदों का प्रयोग 'अंधायुग' में प्रयुक्त कथागायनों में किया गया है। लयों में भावानुसार परिवर्तन होने के कारण लयाधारित संवादों की स्वाभाविकता एवं गतिवक्रता में श्री वृद्धि हुई है। इसी प्रकार तुक-प्रयोग भी एक समान न होकर कहीं नियमित तो कहीं अनियमित रूप में है। प्राय: लयों के निर्वाह में तुकों का महत्वपूर्ण योग रहा है।

'अंधायुग' के संवादों को भाषा-शिल्प की दृष्टि से देखने पर जहां उसमें वृत्तगंधी गद्य की गद्यात्मकता है, विविध बिम्ब-प्रसूत चित्रात्मकता है विभिन्न लयाधारित संगीतात्मकता है, वहीं उसमें सहज बोलचाल की भाषा-शैली के ढंग पर आधारित विवरणात्मक एवं व्यंग्य प्रधान शैली का भी रूप उपलब्ध होता है। अश्वत्थामा, गान्धारी, विदुर एवं प्रहरियों के सम्वाद व्यंग्यात्मक भाषा-शैली की दृष्टि से विशेष

1- अन्धायुग : पृ० 82

2- वही- 'डा० भारती 'निर्देश' पृ० 6

3- ,, ,, ,, पृ० 7

उल्लेखनीय है। सारे नाटक में प्रहरियों के संवादों में व्यंग्यात्मक प्रखरता अधिक निखर उठी है। यथा-

प्रहरी-1 मर्यादा ?
प्रहरी-2 अनास्था !
प्रहरी-1 पुत्र शोक ?
प्रहरी-2 भविष्यत् !
प्रहरी-1 ये सब
राजाओं के जीवन की शोभा हैं।
प्रहरी-2 वे जिनको ये सब प्रभु कहते हैं।
इन सबको अपने ही जिम्मे ले लेते हैं।
प्रहरी-1 पर यह जो हम दोनों का जीवन
सूने गलियारे में बीत गया
प्रहरी-2 कौन इसे
अपने जिम्मे लेगा ?"[1] प्रस्तुत संवाद में तद्युगीन (आज केसंदर्भ में भी) साधारण जन की दयनीय स्थिति अंकन के साथ ही युद्ध-प्रिय शासकों के प्रति उनकी घृणा को भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'ज्ञान और मर्यादा। उनका करें क्या हम ? या उनको ओढ़ेंगे ? या उन्हें बिछाएंगे ?"[2] जैसी पंक्तियों में विवरणात्मक शैली का रूप मिलता है। किन्तु ऐसी सरल पंक्तियां भी व्यंग्य से युक्त हैं।

अस्तु, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'अंधायुग' में प्रबुद्ध मध्यवर्गीय स्तर की परिमार्जित साहित्यिक भाषा और साधारण जन भोग्य बोलचाल की सरल भाषा का मणि-कांचन योग हो पाया है। श्री नेमिचन्द्र जैन जी का कथन है- 'नाट्य-शिल्प के

1- वही- पृ0 28
2- ,, पृ0 109, 110

स्तर पर भी 'अंधायुग' की वह उपलब्धियां हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण है भाषा, जिसमें बिम्ब प्रधानता और भाव-तीव्रता के साथ बोल चाल की सहजता और प्रवाह है, गति और लय की विविधता है। इसके कारण भी 'अंधायुग' एक महत्वपूर्ण अनुभव का सार्थक भावात्मक वक्तव्य बन सका है।'[1]

एकांकी साहित्य

वस्तु-चयन का क्षेत्र एवं आलोच्य एकांकियां :

आज के हिन्दी एकांकी-साहित्य को डा0 भारती जी ने अपने सृजनात्मक प्रेक्ष्य के क्षेत्र में संख्याधिक एकांकी साहित्य की सतरंगी पुष्पावलियों से अलंकृत्यर्थ समृद्ध तो नहीं किया तथापि अत्युत्तम एकावली सदृश्य अपना एक ही एकांकी संग्रह 'नदी प्यासी थी' (सन् 1954) भेंट करके पाठकों की प्यास को और भी बढ़ा दिया है, इसमें संदेह नहीं। चाहे उनमें गुरु की गुरुता, सूर्य की अति प्रखर भास्वरता न भी हो, फिर भी यह निर्भ्रान्त कहा जा सकता है कि उनमें शुक्र की शुक्रता, उज्ज्वलता और चन्द्र की 'एको चन्द्रः तमो हन्ति' वाली उक्ति को सिद्ध करनेवाली सामर्थ्य भी है। वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से।

अपनी एकांकियों में उन्होंने आज के मानव-जीवन से सम्बंधित स्वाभाविक एवं सहज साधारण से घटना-प्रसंगों को अपने विषय-चयन का क्षेत्र बनाकर साम्प्रतिक मानव-जीवन में विद्यमान यंत्रणाग्रस्त परिस्थितियों और वितृष्णाओं के द्वन्द्वात्मक मानसिक परिवेश में उठते-गिरते व्यक्ति की निराशा, कुण्ठा व संत्रासजनक मनो-व्यापारों का यथार्थिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही साथ सम्बंधों के ह्रास और वर्तमान कालीन विकृतियों के भविष्य पर दृष्टिपात करते हुए मानवता

1- सं0 डा0 महेन्द्र भटनागर- 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, पृ0 76

के सहज रागात्मक मूल्यों के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण भी उनकी एकांकियों के प्रमुख कथ्य या उद्देश्य के रूप में उभरकर आया है।

डा० भारती जी के उक्त एकांकी-संग्रह में केवल पांच एकांकियां संकलित हैं जिनमें से एक एकांकी 'संगमरमर पर एक रात' ऐतिहासिक है, तथा शेष चार एकांकियां क्रमश: 'नदी प्यासी थी', 'नील झील', 'आवाज का नीलाम' और 'सृष्टि का आखिरी आदमी' आज के जीवन के विविधात्मक पहलुओं को उजागर करती हैं।

'नदी प्यासी थी' :

यह एक प्रतीकात्मक एकांकी है। लेखक ने बाहरी कथा-वस्तु 'नदी की बाढ़' और किसी प्राणी का जीव या बलि लेकर शांत होनेवाली उसकी मान्यतागत प्यास को आज के व्यक्ति के प्रेम की विसंगति एवं संत्रासपूर्ण वातावरण में बड़े ही नाटकीय कौशल के साथ यथार्थपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। वातावरण की सफल नियोजना के लिए नाटककार ने संवादों व मानसिक-कार्यकलापों को बाहरी या स्थूल कथात्मक घटनाओं एवं स्थितियों के सापेक्ष में रखकर आज के कुण्ठित व्यक्ति की अतृप्ति को तथाकथित 'नदी की प्यास' के स्तर पर देखने की रूपकोपम चेष्टा की है। 'नीली झील' प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई प्रतीकात्मक एकांकी है। इसमें काल्पनिक व अतिलौकिक या इन्द्रजालिक कथा-सूत्रों की प्रधानता है। अत: यह एकांकी 'फैन्टेसी' के अधिक निकट है। वातावरण के कल्पना-प्रसूत होने पर भी इसके सशक्त प्रतीक इसे जीवन-यथार्थ की आत्मा तक पहुंचा देते हैं। भौतिक एवं दलीय स्वार्थों की कटु भर्त्सना करते हुए मानवतावादी भावना को विकसित करना इस एकांकी का प्रमुख कथ्य है। इसीलिए अतिशय भौतिक सुखों की चकाचौंध में अमानुषिक बने हुए आगन्तुक (शासक) को अंतत: क्षमा कर उसे अपनी खोई हुई

आत्मा(मानवता) को पुन: ढूंढ़ने का आदेश दिया गया है। यथा- 'नई आत्मा ढूंढ़ने के लिए वापस जाओ उसी देश में जहां युद्ध हो रहे हैं, जहां प्रजाएं उत्पात कर रही हैं। जहां फौलाद की भट्ठियां धधक रही हैं। जाओ, उस संघर्ष का अर्थ समझो। अन्धेरे से विद्रोह करो, प्रकाश पर आस्था रक्खो, तुम्हें नई आत्मा मिलेगी।'[1]

'आवाज का नीलाम' आवाज एक पत्र का नाम है। इसके माध्यम से पूंजीवादी तंत्र के पोषक समाज के तथाकथित सत्ता व धन-सम्पन्न व्यक्तियों की स्वार्थ-चक्की में अपनी आर्थिक परवशता के कारण पीसे जानेवाले मध्यवर्ग के व्यक्ति की ट्रेजड़ी को सशक्त नाटकीय ढंग से चित्रांकित किया गया है। पत्रकार दिवाकर ने अपनी सारी सम्पत्ति लगाकर, अपने रक्त से लिखकर 'आवाज' पत्र निकाला, तब उसकी किसी ने सहायता नहीं की, किन्तु जब पत्र की लोकप्रियता बढ़ गई तब पत्रकार की पत्नी के बीमार पड़ने पर उसकी आर्थिक दुरवस्था का लाभ उठाकर दलीय स्वार्थ पोषक सेठ बाजोरिया उसके पत्र को बलात् खरीद लेता है। किन्तु जब दिवाकर को उसकी पत्नी की मृत्यु का दु:खद समाचार मिलता है तब पत्र को अपने हस्ताक्षर सहित बेच देने के कारण उसकी बेचैनी और भी बढ़ जाती है। इस प्रकार प्रस्तुत एकांकी का अंत बड़े ही करुणात्मक ढंग से होता है। 'संगमरमर की रात' ऐतिहासिक एकांकी है। इसमें जहांगीर एवं मेहरुन्निसा के प्रणयी रूपों का मनोद्वन्द्व परक परिवेश में मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

इसका कथानक शेर अफगन की हत्या के पश्चात् उसकी बेवा मेहरुन्निसा के आगरे के महल में कैद होने से लेकर उसके राजरानी होने तक के इतिवृत्त पर आधारित

1- नदी प्यासी थी - 'नीली झील- पृ0 48

है। पति के प्रतिशोध की प्यासी मेहरुन्निसा एक साधारण स्त्री के रूप में कसीदाकारी करके अपना और अपनी बेटी लाड़ली का निर्वाह करते हुए जहांगीर के हरम को, उसके प्रेम को अस्वीकारती रहती है। जहांगीर ने उसे आज से 20साल पहले जबकि वह आज 20 वर्ष की है प्यार किया था और वह प्यार मेहरुन्निसा में अब भी कहीं बना हुआ है। इसी कारण वह उसे अब भी प्यार कर रहा है। नहीं तो उसे खत्म ही कर देता। मेहरुन्निसा की सर्द दिली देखकर उसके प्रति उसे खूब घृणा होने लगती है। किन्तु लाड़ली उसे यह बतलाती है कि परवेज जैसे बेटे का पिता जहांगीर हत्यारा हो ही नहीं सकता। वह निर्दोष है, उसके दिल में अब भी मेहर के प्रति गहरा खिंचाव है। दूसरे दृश्य में मृत: शेर अफगन की छाया से मेहरुन्निसा के साथ वार्तालाप करा के उक्त बात को और भी स्पष्ट किया गया है कि मेहर अब भी जहांगीर को भूली नहीं है। औरतों की भावुकता बड़ी ही खौफनाक होती है। अत: उसके लिए अब जहांगीर का हरम कुबूल कर लेना ही उचित है। उक्त बात से अंतत: मेहर जहांगीर की बात मान लेती है। शहनाइयाँ बज उठती हैं। किन्तु नाटक यहां एक करुण एवं सनसनीपूर्ण मोड़ ले लेता है लाडली का प्रेमी परवेज अब अपने प्यारे भाई खुसरु की हत्या का बदला लेने के लिए सन्नध हो जाता है क्योंकि वह बेवा मेहरुन्निसा की लड़की का प्यासा था, मल्कए मुअज्जमा की लड़की का नहीं। इस प्रकार नाटक का अंत हर्ष एवं अश्रु पूर्ण वातावरण में होता है।

प्रस्तुत एकांकी में स्थूल घटनाओं का कोरा अंकन न कर 20 साल पूर्व की प्रेमानुभूति की मर्म-व्यंजक संवेदनाओं व संवेगों का तथा घात-प्रतिघातात्मक प्रतिक्रियाओं का तथ्यांकन किया गया है। कहीं-कहीं पात्रों से सम्बंधित घटनाओं का संकेत मात्र देकर ही ऐतिहासिक सूत्रों को सम्भालने की चेष्टा की गई है। इससे नाटकीय सूत्रों में एकान्विति की क्षमता का सहज उन्मेष हो सका है। यथेष्ठ वातावरण को गहरा बनाने के लिए बीच-बीच में गीतों एवं काल्पनिक दृश्यों की

य ोजना भी की गई है। मृत: शेर अफगान का उसकी अप्राकृतिक छाया के साथ मेहरुन्निसा से वार्तालाप करवाना ऐसा ही प्रसंग है। इसके अभाव में यथेष्ट प्रभाव की प्रतीति कदाचित संभव न हो सकती। इसी प्रकार पात्रों की आयु, घटना काल, व स्थान आदि का निर्देश देकर संकलन-त्रय की एकता को भी सुरक्षित रखने का प्रयास बनाए रखा है।

'सृष्टि का आखिरी आदमी' रेडियो-छन्द-नाट्य एकांकी है। इसमें ह्रासोन्मुखी संस्कृति की अमानुषिक या मानवता घातक प्रवृत्तियों के आलोक में आधुनिक समाज की विकलांग एवं प्राणशून्य स्थितियों का हास-व्यंग्यात्मक शैली में चित्रांकन करते हुए तथाकथित संस्कृति के ध्वंस पर मानव भविष्य की नई सृष्टि-निर्माण का सुखद कल्पना-चित्र प्रस्तुत किया गया है। एकांकी के अंत में नाटककार की नये मानव-मूल्यों के प्रति दृढ़ आस्थावादी भावना एक क्रान्ति-दृष्टा कृषि की उद्घोषणा के रूप में परिणति पा लेती है।

एकांकी : वस्तु-नियोजना :

डा० भारती जी की एकांकियों का कथानक प्राय: अन्तर्द्वन्द्व -प्रधान मानसिक घटनाओं (Mental Phenomenons) के सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट ताने-बाने से बुना हुआ है। इनमें जीवन-जगत के किसी एक मार्मिक प्रसंग या घटना से उत्पन्न परस्पर दो विरोधी मानसिक भावनाओं के द्वन्द्व को विभिन्न पात्रों के आत्म-विचारों, प्रश्नों, तर्कों एवं कुण्ठाओं के माध्यम से प्रस्तुत कर कथानक को स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास किया है। यही कारण है कि डा० भारती जी की एकांकियों में मानव-मन की गहराइयों को अंकित कर लेने वाली यथार्थपरक छवियों के दर्शन होते हैं। इसी तथ्य की पुष्टि के लिए विजय बापट जी का कथन उद्धृत किया जा सकता है - "मानवीय जीवन धारा को पूर्णत: झकझोर

कर, मनोभूमि की अतल गहराई में सुप्त भावनाओं को जगाकर मानसिक उद्वेलन उत्पन्न करने वाली स्थिति और क्षणों को लेकर डा0 भारती ने अपने एकांकियों का सृजन किया है।"[1] उक्त तथ्य की दृष्टि से विशेषत: 'संगमरमर पर एक रात' 'नदी प्यासी थी' और 'आवाज का नीलाम' एकांकियां उल्लेखनीय हैं। आज से 20 साल पहले की एक मार्मिक प्रेमानुभूति जब प्यार और नफरत के द्वन्द्व से गुजरती है तब मेहरुन्निसा की मन:स्थिति को जहांगीर के शब्दों में ही देखिये - 'अपने दिल की तनहाइयों में तुम बार-बार उस प्रेम कहानी को दोहराती रहीं जो आज से 20 साल पहले घटी थी। और फिर भी तुम्हारे मन का एक हिस्सा दूसरे हिस्से से लड़ता रहा और तुमने हर तरह से मेरी ओर से एक सर्द दिली बनाये रखने की कोशिश की और हर बार दिल को धोखा देने की कोशिश करती रही।"[2] 'नदी प्यासी थी' का राजेश भी प्रेम की निष्फलता के कारण जिन्दगी की प्यासी नदी की बाढ़ में बलि के बकरे की तरह जीवन और मृत्यु के बीच भटकता रहा है किन्तु अंतत: पद्मा का प्रेम पाकर उसे जिन्दगी का अर्थ उपलब्ध हो जाता है और उसे लगा कि 'जब तक जिन्दगी में एक कण सौंदर्य है, तब तक मरना पाप है"[3] पत्रकार दिवाकर आर्थिक परवशता के कारण ही पत्र को बेचने और न बेचने की द्विधाग्रस्त मन:स्थिति को अनुभूत करता है किन्तु उस किंकर्तव्यमूढ़ता में पत्र को बेच देने पर जब बीमार पत्नी की मृत्यु का जैसे ही समाचार सुन पाता है वैसे ही उसका स्वाभिमान जाग उठता है।[4]

ऊपर विवेचित अन्तर्संघर्ष-प्रधान कार्य-व्यापारों में निराशा, मृत्यु-बोध, चिन्ता, शोक, आत्म-ग्लानि, पश्चाताप तथा कर्तव्य-भावना के द्वन्द्व जैसे तनावपूर्ण

1- प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य (प्र0 सं0 1971) पृ0 188

2- डा0 भारती : 'नदी प्यासी थी' की एकांकी 'संगमरमर का एक रात' पृ0 79 प्र0 सं0 1954

3- वही- नदी प्यासी थी - पृ0 30

4- दे0 ,, आवाज का नीलाम' -

वातावरण की घनिष्टता होने के कारण उक्त एकांकियां प्राय: त्रासदीय कथा-सूत्रों से निर्मित हैं। किन्तु एकांकी के दुखान्त तक की स्थिति पर आते ही उसका कथानक एक नया मोड़ ले लेता है। यहां आकर डा0 भारती जी की मानवता की रक्षा एवं अमरता का उद्घोषणा करनेवाली जीवन-जगत् के प्रति आस्थावादी दृष्टि अभिव्यक्त हो जाती है जो इसे दु:खान्त होने से बचाकर प्रसादान्त का रूप प्रदान कर देती है। यही कारण है राजेश अपनी जिन्दगी की ओर लौट आता है, मेहरुन्निसा प्रेमसे समझौता कर लेती है, पत्रकार दिवाकर पत्नी की मृत्यु के बाद अपने अभीष्ट की ओर उन्मुख हो जाता है। इसी प्रकार 'नीली झील' तथा 'सृष्टि का आखिरी आदमी' एकांकियों के अंत को भी देखा जा सकता है।

वस्तुत: पूर्व निर्दिष्ट त्रासदी पूर्ण जीवन का कारण आज की भौतिक विषमता जन्य सुख-दु:ख ही है। इनसे मानव-जीवन की मुक्ति व नित्यानंद के लिए डा0 भारती जी की जीवन-दृष्टि प्रेम, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा, समता व दयार्द्रता जैसे अभौतिक जीवन-मूल्यों की आत्म-प्रतिष्ठा को ही सर्व-श्रेष्ठ समझ कर चली है। प्राय: ऐसे स्थलों पर एकांकियों का कथानक काव्यात्मकता एवं वैचारिक तत्वों की पृष्ठभूमि में संश्लिष्ट कथा-सूत्रों की प्रतीकात्मक व्यंजना करने लगता है। एकांकियों में चित्रित तथाकथित भाव-भीने व विचारोत्तेजक कथा-सूत्रों का मणि-कांचन संयोग होने के कारण ही नाटकीय कथा-वस्तु में कुतूहलता, सरसता, रोचकता एवं सम्प्रेषणाशीलता जैसे गुणों की अभिवृद्धि हो सकी है।

रंगमंचीयता :

वस्तुत: किसी भी नाटक कीसफल अभिनेयता का मूलाधार रंगमंचीय कला-दृष्टि ही है। अत: यह कहा जा सकता है कि रंगमंचीय कला-दृष्टि ही उस नाटक की प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य करती है। डा0 भारती जी ने रंगात्मक प्रयोगों का

यथोचित उपयोग करके ही अपने एकांकी-नाटकों को अभिनीत बनाने का प्रयास किया है। तथा कुछ भार निर्देशक के ऊपर भी सौंप दिया है। उन्हीं के शब्दों में -" मैंने अपनी ओर से यही प्रयास किया है कि रंगमंच के लिये पूर्णतया उपयुक्त सिद्ध हों फिर भी जहां तक नाटकों का सम्बन्ध है नाटककार और निर्देशक मिल कर ही उसका अंतिम स्वरूप स्थिर कर सकते हैं।"[1]

डा0 भारती जी के नाटक कई बार अभिनीत होकर अपनी सफल रंगमंचीयता का प्रमाण देते रहे हैं। 'मेरी कई नाट्य कृतियों को श्री प्रभाकर आचार्य बड़ी सफलता से प्रस्तुत कर चुके हैं।"[2]

डा0 भारती जी की रंग-दृष्टि बहुत ही साफ-सुथरी व आकर्षक है। मंचीय साज-सजावट, कम से कम पात्र-प्रयोग, सरल व सटीक भाषा-शैली, वेश-भूषा, हाव-भाव एवं मुख-मुद्राओं के सम्बंध में अनेक प्रकार के संकेत देकर नाटकीय वस्तु को रंगमंचीय बनाया गया है। इनसे भावों की प्रेषणीयता एवं अर्थ-ग्राह्यता में वृद्धि हो सकी है। कथानक के दुरूह और जटिल होने से बच सका है। उदाहरणार्थ 'व्यंग्य से हंसकर 'पद्मा का आंचल अंगुलियों पर लपेटने लगता है' 'हाथों में उसके हाथ लेकर', 'फीकी हंसी हंसकर' आदि कतिपय ऐसे ही मंचीय-संकेत हैं जिनसे मानवीय मनोभावों का अभिनय सरल हो सका है। कुछ दृश्य अवश्य ही मंचोपयुक्त नहीं हैं किन्तु रंग-कुशल निर्देशक के द्वारा तद्युत्पन्न बाधाओं को दूर किया जा सकता है।

पात्र -योजना :

प्रस्तुत संकलन की पांच एकांकियों में 'नदी प्यासी थी', 'आवाज का नीलाम', और 'संगमरमर पर एक रात' के पात्रों में आज के विघटित, कुण्ठित एवं अन्तर्बाह्य की

1- दे0 डा0 भारती- 'नदी प्यासी थी'- निवेदन-पृष्ठ-

2- वही- निवेदन- पृष्ठ-

कटुतापूर्ण विसंगतियों से ग्रसित व्यक्ति केमनोद्वन्द्वों का यथार्थपरक चित्रांकन किया गया है। शेष दो एकांकियां- 'नीली झील' और 'सृष्टि का आखिरी आदमी' केपात्र शासक एवं शोषित वर्ग की भावना-जगत के प्रतिनिधि पात्र हैं। इनमें वर्ग-विशेष की प्रतिनिधि भावनाओं का अंकन होने के कारण ऐसे पात्र प्रतीकात्मक हो गए हैं। इससे यह स्पष्ट होजाता है कि इन एकांकियों में व्यक्तिगत चारित्रिक रेखाओं के उद्घाटन की ओर विशेष ध्यान न देकर प्राय: युग-सापेक्ष्य पृष्ठभूमि में परिप्रेक्ष्यगत पात्रों की अवतारणा का ही प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक पात्रों की व्यथा एवं अन्तर्द्वन्द्व का कारण आज की ह्रासोन्मुखी भौतिक सभ्यता एवं उसके अनेक विध दुष्परिणामों पर ही अवलम्बित है। अत: इन एकांकियों से व्यक्तिगत पात्रों की अपेक्षा अधिकतर सामूहिक या सामाजिकता प्रधान पात्रों की ही सृष्टि होसकी है। आज के संक्रमित मूल्यों की ही[illegible] की राह से गुजरते हुए व्यक्ति की छटपटाहट, निराशा, कुण्ठा, अनास्था, अतृप्ति, आदि भावों और विकृतियों के साथ ही उसकी आशा, तृप्ति, जिजीविषा, तथा आदर्शवादी मूल्य भावनाओं का भी अंकन किया गया है।

कुछ एकांकियों में 'नेरेटर' पात्र का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। 'नीली झील' शीर्षक एकांकी का तांत्रिक तथा प्रथम पुरुष और दूसरा पुरुष वस्तुत: ऐसे ही 'नेरेटर' पात्र हैं। इसी प्रकार 'सृष्टि का आखिरी आदमी' शीर्षक एकांकी में उद्घोषक का पात्र के रूप में कियागया नव्य प्रयोग तो स्पष्टत: 'नेरेटर' का रूप में कि प्रस्तुत [illegible] प्रस्तुत करता है। प्राय: ऐसे पात्रों के माध्यम से नाटकीय कथा-वस्तु एवं अन्य पात्रों की स्थान-स्थान पर आलोचना की गई है। 'सृष्टि का आखिरी आदमी' एकांकी में 'वैज्ञानिक के मुर्दे को मंच पर अभिनीत बताकर नाटककार ने अपनी विशिष्ट पात्र-सृष्टि का परिचय दिया है।

नाटकों में कोई भी पात्र तभी सशक्त एवं प्राणवान बन सकता है जब विभिन्न रंग-संकेतों के द्वारा कुशल निर्देशक की भांति नाट्यकार अपने पात्रों की चारित्रिक रेखाओं कोउद्घाटित करने के लिए मनोवैज्ञानिक किन्तु काव्यात्मक उद्योग-सापेक्ष दृष्टिकोण को अपना कर चलता है। प्रस्तुत संकलन की एकांकियों में विभिन्न पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों, तनावों व दबावों की सी मनोवैज्ञानिक स्थितियों को उजागर करने, विभिन्न रंग-संकेतों का प्रयोग भी किया है। जिससे चरित्रों की स्वाभाविक व वास्तविक भाव-मुद्राओं का सजीव रूपांकन हो सका है।

यदि ऊपर विवेचित एकांकियों के विभिन्न पात्रों को किसी वैचारिक दृष्टिकोण से देखने-परखने का प्रयास किया जाय तो सामान्यतया इन्हें निम्नरूपेण वर्गीकृत किया जा सकता है - यथा- (1) पूंजीवादी या साम्राज्यवादी राजनीति पोषक-वर्ग भावना के पात्र(2) मानवतावादी मूल्य-भावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले वर्गीय-चेतना के संघर्षवादी पात्र(3) प्रेम-भावना के द्वन्द्वों से आहत किन्तु आशावादी पात्र।

उपर्युक्त वर्गीकरण की दृष्टि से 'नीली झील' का 'आगन्तुक' 'सृष्टि का आखिरी आदमी' एकांकी का 'शासक' तथा 'आवाज का नीलाम' एकांकी का 'सेठ बाजोरिया' आदि जैसे पात्र प्राय: पूंजीवादी या साम्राज्यवादी राजनीति-पोषक वर्ग-भावना के प्रतिनिधि पात्र हैं। ऐसे पात्र अपनी अधिकार लिप्सा व भौतिक सुखेच्छाओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार का नाटक करते हुए दृष्टिगत होते हैं। डा० भारती जी ने 'मानव मूल्य और साहित्य' में इसीलिए स्पष्टतया लिखा है कि- 'लेकिन पिछले दस वर्षों में, न केवल विदेशों मेंवरन् भारत में भी राजनीति का महत्व घटा है। मानव-नियति को केवल राजनीति की परिभाषाओं में ही समझा जा सकता है, सत्य इसके विपरीत ही सिद्ध हुआ। राजनीति की वह चिन्तनधाराओं ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यह दावा पेश किया था किन्तु वे मानव-मुक्ति को ही लक्ष्य बनाकर चल रही हैं, पर इन्होंने जिन व्यवस्थाओं को स्थापित किया उनको

जनतंत्र का नाम तो अवश्य किया, पर अधिकांश व्यवस्थाओं में तन्त्र औरों के ही हाथ में रहा, 'जन' तो ज्यों का त्यों दास बना रहा। यह बात केवल विदेशों पर ही लागू नहीं होती। दुर्भाग्यवश यह कटु सत्य हमारे देश पर भी लागू होता दीख रहा है।"[1] उक्त उद्धरण की दृष्टि से देखने पर 'नीली झील' एकांकी का 'आगन्तुक एक ऐसा ही पूंजीवादी राजनीति पोषक जन-भावनाओं का शोषक शासन-वर्गीय पात्र है - स्वयं उसी के शब्दों में - "और तब प्रजाओं का राज्य हुआ। प्रजातंत्र। सत्ता मेरे हाथ में थी, तंत्र प्रजाओं का था। फिर प्रजातंत्र दो हुए। सोने के प्रजातंत्र और जनता के प्रजातंत्र, और सोना मेरा था और जनता के दिमागों पर कब्जा मेरा था और प्रजातंत्र दो थे, एक का तानाशाह मैं था और दूसरे का तानाशाह मैं था और मैं अपने से लड़ रहा था।"[2] 'आवाज का नीलाम' एकांकी का 'सेठ बाजोरिया' भी एक ऐसा ही चरित्र है जो जनहित साधना का नकली लबादा ओढ़े दलीय-स्वार्थ-नीति के पोषण के लिए अपनी अर्थ-शक्ति के बल से दूसरों के अधिकारों व ठेकों पर कब्जा या प्रभुत्व जमा लेता है। ऐसे पात्र बात तो साम्यवादियों की तरह करते हैं किन्तु चाल तो पूंजीवादी राजनीति की ही चलते हैं। लेखक ने उसके मुखौटे - परक हुलिये व व्यक्तित्व का बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रांकन किया है।

मानवतावादी मूल्य-भावनाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाले वर्गीय-चेतना के संघर्षवादी पात्रों की दृष्टि से 'नीली झील' एकांकी का तांत्रिक 'सृष्टि का आखिरी आदमी' का वैज्ञानिक तथा 'आवाज का नीलाम' एकांकी का पत्रकार 'दिवाकर' जैसे पात्र उल्लेखनीय हैं। ऐसे पात्र सच्चे अर्थों में मानवता के मूल्यों के भक्त हैं, रक्षक हैं जो आदि से अंत तक मानवतावादी अथवा गांधीवादी अध्यात्म की राह पर चलते हुए

1- मानव मूल्य और साहित्य : डा० भारती : पृ० 73-74

2- नदी प्यासी थी (प्र० सं० 1954) डा० भारती : एकांकी- 'नीली झील' पृ० 42

मानव-समतामूलक जीवन-मूल्यों की विचारधारा को ही विश्व-सभ्यता की प्रगति का मूल कारण समझते हैं। अत: इन पात्रों के द्वारा भौतिक, औद्योगिक, व उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी चेतना के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद फूंका गया है। 'नीली झील' का तांत्रिक आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए सोना, शोषण, अधिकार-लिप्सा तथा तानाशाही शासन-प्रणाली की सी भौतिक सभ्यता पोषक अमानुषिक तत्वों पर कुठाराघात करता है। उसके द्वारा आगन्तुक को 'नई आत्मा' प्रदान करने में यही मानवतावादी भावना निहित है। इसी प्रकार वैज्ञानिक भी आज के मानव के भविष्य का चिंतक है। वह मानवता के सहज मूल्यों की रक्षा के लिए तथाकथित पूंजीवादी राजनीति पोषक शासकों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करता है इसके लिए उसे शासक एवं उसके सेनापतियों के कोप का भाजन होना पड़ता है। वह उनकी गोली के लगने से मर जाता है किन्तु मरने के बाद भी उसमें प्रतिशोध की ज्वाला विद्यमान है -

'यह बन्दूकें ये सेनाएं
कुछ काम नहीं देंगी मुझ पर
मैं मृत्युलोक से लौटा हूं
मृत्युंजित हूं।
मेरे माध्यम से कोई और बोलता है
मैं धरती की जनता की
प्रभु की वाणी हूं।'[1]

अस्तु यह कहा जा सकता है कि वह्निजीत् की राजनीतिक विडम्बनाओं एवं बिसंगतिपूर्ण परिस्थितियों के घात-प्रतिघातों से ये पात्र हतोत्साहित व कुण्ठित अवश्य ही हैं किन्तु अन्तर्द्वन्द्व की चरम अवस्था में अन्तर्मुखी होनेवाले इन पात्रों में

1- ए0 सं0, नदी प्यासी थी की 'सृष्टि का आखिरी आदमी' एकांकी-पृ0 113

अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति समझौता विहीन विद्रोह की चेतना भी अटूट रही है। पत्रकार दिवाकर वस्तुत: निम्न मध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक व राजनीतिक विसंगतियों का शिकार ग्रस्त व्यक्ति है, उसमें पूंजीवादी तंत्राश्रित शासन प्रणाली के प्रति घोर विरोध की बलवती भावना है किन्तु आर्थिक विवशता उसके विवेकोचित कार्य में बाधा पहुंचाती है। यही कारण है कि वह अपनी विवशताओं में अपने पत्र 'आवाज' का ठेका तो सेठ बाजोरिया को दे देता है किन्तु पत्नी के मरने पर पुन: उस पत्र को अपने अधिकाराधीन करने का प्रयत्न भी करता है।

प्रेमी भावना के द्वन्द्वों से आहत किन्तु आशावादी या आस्थावादी भावना के प्रतिनिधि पात्रों की दृष्टि से 'नदी प्यासी थी' एकांकी का राजेश 'पद्मा' और 'संगमरमर पर एक रात' की मेहरुन्निसा तथा जहांगीर आदि प्रमुख पात्र हैं। वास्तव में ये आदर्शवादी प्रेम-पथ पर चलनेवाले भावुक एवं आस्थावादी पात्र हैं। अपने आदर्शवादी विशुद्ध एवं एकांगी प्रेम-भावनाओं का जब किसी अन्य प्रणयी पात्रों द्वारा अनादर होता है तब उन्हें जीवन-जगत् के प्रति उपेक्षा व घृणा होने लगती है। अपनी कुण्ठित वे अपमानित अवस्था में अवश्य ही ऐसे पात्र आत्म-हत्या के लिए प्रयत्नशील होते हैं किन्तु उन्हें जीवन का अंतिम आनंदवाली-सौंदर्यवादी संदेश भी प्रेम की मधुर छाया से ही मिलता है। अत: प्रेम ही इनके जीवन का उप-जीव्य है, इसीलिए कहीं-कहीं ये पात्र प्रेम को ईश्वर से भी अधिक महत्व देते हुए दृष्टिगत होते हैं। हां इतना अवश्य ही है कि जब तक वे अपने प्रेमी पात्र की अग्नि-परीक्षा नहीं कर लेते तब तक उन्हें चैन नहीं मिलता। इसीलिए 'नदी प्यासी थी' एकांकी का राजेश अपनी प्रेयसी कामिनी को ईश्वर से भी ज्यादा मानता है किन्तु इसके लिए वह कामिनी को प्रेम और त्याग, संयम और सहिष्णुता की बात कर उसके आदर्श प्रेम को भलीभांति परीक्षित भी कर लेना उचित समझता है। 'संगमरमर पर एक रात' का जहांगीर भी एक ऐसा ही द्वन्द्वग्रस्त प्रेमी-पात्र है एक दिन उसने अपने प्रेम के बल और उसके अटूट विश्वास से अभिभूत होकर ही नूरजहां को कहा था कि - मैं खुदा पर भरोसा न कर सकूंगा पर आप पर कर सकता हूं।"[1] किन्तु जब उसने अपने

1- नदी प्यासी थी की 'संगमरमर पर एक रात' एकांकी- पृ0 81

प्रेयसी के हृदय को दो टुकड़ों में विभाजित होते देखा तब उसका द्वन्द्व और प्रेम की उपेक्षा और घृणा के रूप में परिणति पा लेता है। और अंतत: वह अपने प्रेमी-पात्र को प्यार के इन्साफ की कसौटी पर कस कर ही अंगीकार करता है।

तात्पर्य यह है कि मनोविकारों के द्वन्द्व से ग्रस्त ऊपर निर्दिष्ट प्रणय-पात्रों के माध्यम से एकांकीकार डा० भारती जी के प्रेम के खोखलेपन की पृष्ठभूमि में आधुनिक मानव के प्रेम-सम्बंधों की तर्क एवं न्यायसंगत बौद्धिक व्याख्या की है।

भाषा-संरचना एवं संवाद-वेष योजना :

एकांकी में कम से कम पात्रों के प्रयोग के द्वारा जीवन के किसी एक मार्मिक प्रसंग वा घटनानुभूति की सशक्त व्यंजना की जाती है। एकांकी का सम्बंध सामाजिकता से होने के कारण इसकी भाषा प्राय: जनोनुकूल होती है। किन्तु कलाकार का प्रमुख उद्देश्य वा दृष्टिकोण नाटकीय भाषा को रसानुकूल, पात्रानुकूल एवं अभिनयात्मक रूप प्रदान करते हुए अपने सौंदर्य-सृजन द्वारा रसात्मक बोध की अभिव्यक्ति भी कराना होता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने तो स्पष्टत: ही कहा है 'रसस्य नाट्यम'[1]।

आज के संक्रान्तिमूलक परिवेश में कथा साहित्य की भांति ही नाटक में भी वस्तु, पात्र एवं अभिव्यंजना प्रणाली आदि तत्व बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी होते गये हैं। अत: आधुनिक साहित्यकार भी जीवन यथार्थ के मानसिक संघर्षों एवं विसंगतियों कीसशक्त एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए नाटकीय भाषा को सटीक शब्द-प्रयोगों, बिम्बों एवं प्रतीकों के द्वारा सम्प्रेषणशील बनाता है।

1- अभिनव भारती : अध्याय 6। 15 गद्य भाग- पृ० 428
(हिन्दी विभाग- दिल्ली विश्वविद्यालय)

डा0 भारती जी के अपने एकांकी-नाट्य साहित्य का प्रणयन रंगमंच की पूर्णतया उपयुक्तता की सिद्धि के दृष्टिकोण से किया है। उनकी एकांकियों में भाषा-संरचना में सहज बोलचाल की किन्तु भावानुकूल एवं पात्रानुसारी भाषा का प्रयोग हुआ है। कहीं भी क्लिष्ट शब्दों व अनभिनयात्मक वाक्यों का व्यवहार नहीं हुआ है। एकांकियों में 'कमरा', 'तस्वीर', 'तख्त', 'सोखा', 'उजरत' आदि जैसे उर्दू शब्दों के साथ ही शिक्षित-वर्ग में व्यहृत 'शो-रूम' 'वोल्यूम', 'टैलकम पाउडर' 'शेव', 'ऐश ट्रे', 'पेपर-वेट', 'नर्वस टेन्शन' जैसे अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बाहुल्य मिलता है। विभिन्न मन:स्थितियों की तीव्रतर अभिव्यंजना के लिए 'पैरों की धूल भी नहीं हो', 'आपे में नहीं हूँ', 'कांटे बोना', दांत पीसना', 'अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना', 'तिल धरने की जगह न होना' आदि जैसे मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है। 'नदी प्यासी थी', 'नीली झील' और 'सृष्टि का आखिरी आदमी' शीर्षक एकांकियों में बिम्बात्मक एवं प्रतीकात्मक शब्दों तथा आलंकारिक भाषा के सहज प्रयोग के कारण नाटकीय भाषा काव्यात्मक हो गई है। प्रस्तुत काव्यात्मक भाषा का व्यवहार प्राय: एकांकी में यथेष्ट भावों की नियोजना एवं वस्तुलक्षी वातावरण निर्माण के हेतु हुआ है। उक्त एकांकियों में भावुकतापूर्ण स्थलों तथा जीवन-जगत् सम्बंधित चिन्तन के क्षणों की भाषा ऐसी ही है। यहां इनके कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं -

(1) 'थोड़ी देर में सूरज डूबने लगा। सैकड़ों सिन्दूरी बादल पानी में उतर आये और फूल की तरह धीरे-धीरे बहने लगे।"[1]

(2) याद करो, जब तुम इस नीली झील के किनारे बैठकर बांसुरी बजाया करते थे तो लहरों के साथ नाचती हुई एक परछाईं आती थी और तुम्हारे पैरों के पास शान्त जल में सोई हुई तुम्हारा गीत सुनती थी वह नीली झील के समान स्वच्छ और गहरी थी, वह झील सतह पर सांवले कमल की तरह खिलती थी"[2]

1- नदी प्यासी थी(ए0 सं0) की वही एकांकी-पृ0 29-30

2- वही-संग्रह-'नीली झील- पृ0 43

(3) 'सुबह हुई तो देखा पश्चिम के पहाड़ पर
एक आग का जलता बादल टंगा हुआ !
+ +
मार भले लें हमको लेकिन
महावाश के तूफानों में
ये भी पीले पत्तों जैसे झर जायेंगे ।"[1]

उपर्युक्त उदाहरणों में बिम्बात्मक प्रतीकात्मकता के साथ ही उपमा एवं मानवीकरण जैसे अलंकारों की सुंदर नियोजना हुई है । ऐसे स्थलों की भाषा चित्रात्मक ही नहीं अपितु विशेष भाव-गर्भित ध्वनियों से युक्त भी है । प्रस्तुत उदाहरणों में 'सैकड़ों सिन्दूरी बादल', 'नीली झीलें', 'सांवले कमल', 'आग का जलता बादल' और 'ये भीपीले पत्तों जैसे' दृश्यात्मक बिम्ब क्रमश: जीवन का सौंदर्य और प्रेम, पवित्रतावादी-अध्यात्मवादी देश, आत्मा, महानाश, और आतंकवादी-दल के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं ।

नाटक या एकांकी में संवादों या कथोपकथनों का महत्वपूर्ण स्थान है । संवादों के द्वारा ही नाटकीय कथावस्तु काविकास एवं उसके चरित्रों का उद्घाटन किया जाता है । डा० भारती जी के नाटकीय संवाद उक्त दोनों ही हेतु को सिद्ध कर सके हैं । एकांकियों में प्रयुक्त संवाद विविध स्तरीय पात्रानुकूलता एवं भावानुसारिता के गुणों से परिपूर्ण हैं । इनसे पात्रों के आचार-विचारों, और उनके आंतरिक व बाह्य संघर्षों की सहज अभिव्यक्ति हो सकी है । सबके बोलने और सोचने का ढंग अलग-अलग होने से संवादों की भाषा-शैली भावानुकूल वातावरण के निर्माण में अत्यंत सहायक हुई है ।संकट और तनावपूर्ण स्थितियों में पात्रों की भाषा में व्यंग्य, आक्रोश, व कटुक्तियों की सहज छटा मुखरित हुई है । जहां पात्र जीवन-जगत्

1- वही- 'सृष्टि का आखिरी आदमी' - पृ० 104-105

की गंभीर समस्या अथवा उस पर उठते हुए वाद-प्रतिवादों पर अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं तब उनकी भाषा आलोचना या व्याख्या प्रधान शैली का रूप ग्रहण कर लेती है। इस दृष्टि से 'नदी प्यासी थी' एकांकी का पात्र राजेश, संगमर मर पर एक रात' का जहांगीर, 'सृष्टि का आखिरी आदमी' का उद्घोषक आदि पात्रों की भाषा विशेष उल्लेखनीय है। इसका एक उदाहरण 'नदी प्यासी थी' शीर्षक एकांकी से दिया जा रहा है। राजेश को नारी में प्रतिभा की कमी तथा उसके अस्थिर या अस्थायी प्रेम की विषाक्तता का कटु अनुभव हो चुका है। अत: वह नारी-जगत को उपेक्षा व घृणा की दृष्टि से देखता है। जब शीला राजेश को किसी जीनियस लड़की से शादी कर लेने की बात प्रस्तुत करती है, तब इस पर राजेश की कटूक्तियां देखिए कितनी तीखी व मार्मिक हैं -

"जीनियस और लड़की। यह सर्वथा अन्तर्विरोध है। औरत जीनियस हो ही नहीं सकती। उसके लिए जिन्दगी का बाह्य सबसे प्रमुख होता है।---यह कोई प्रतिभा है। प्रतिभा विद्रोह करती है, सृजन करती है। नारी केवल प्रसव करती है या प्रसाधन प्रसव की भूमिका---क्षमा कीजियेगा। यही है पद्मा। इनकी मेज पर कामायनी रक्खी है। लेकिन कामायनी के ऊपर क्या है? पाउडर का डिब्बा।"[1] आवेगपूर्ण क्षणों में पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा छोटे-छोटे वाक्यों में से निर्मित है। वाक्य बड़ी क्षिप्रगति से चलते हैं। टूटक एवं अधूरे वाक्यों का प्रयोग भी प्राय: ऐसे ही स्थलों पर अधिकतर हुआ है। 'नदी प्यासी थी' के राजेश और शंकर तथा 'आवाज का नीलाम' के पत्रकार दीवाकर के संवादों की भाषा इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। राजेश जिन्दगी से टूटा, हारा और हताश प्राय: प्र व्यक्ति है अत: उसके संवादों की भाषा में जिन्दगी की ऊब, परेशानी एवं निराशा के स्वरों को स्पष्टतया अभिव्यक्ति हुई है।[2] इसी प्रकार पत्रकार दीवाकर जीवन के विषम संघर्षों से प्रताडित व्यक्ति है किन्तु इस प्रताडना के मध्य भी उसमें अपने गौरवपूर्ण

1- वही- 'नदी प्यासी थी' - पृ0 21

2- वही- पृ0 4, 11

व्यक्तित्व को बनाए रखने की अदम्य कांक्षा और साहस भी है। अत: उसकी भाषा में प्रतिवादियों के प्रति व्यंग्य एवं आक्रोश का भाव प्रबलतर रूप से उभर आया है - पूंजीवादी राजनीति का पोषक सेठ बाजोरिया को लक्षित कर उसके द्वारा किये गये संवादों की भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुतव्य है - "---अच्छा है मैं न समझ सकूं, बाजोरिया जी। अब साधना और तपस्या के दिन भी तो नहीं रह गए। अब कलम की शान और विचारक की आजादी का भी तो कोई अर्थ नहीं रहा। अब तो अगर मैं आपके पत्र में हूं तो आपका ढोल बजाऊं, उसके पत्र में हूं तो--- आप जानते हैं, जब चटर्जी को 60 रुपये मिलते थे तब वह सम्पादकीय लिखता था, आज जब आप उसे ढाई सौ दे रहे हैं तब वह डिक्टेशन लिखता है। आपका डिक्टेशन, जिसने अपनी जिन्दगी में सिवा बही खाते के कुछ भी न लिखा होगा---"[1] इसी प्रकार प्रणय, व्यथा वा करुणा जैसे संवेदनापूर्ण प्रसंगों की मार्मिक व सजीव अभिव्यक्ति के निमित्त भावुकता संवलित वाग्विधान की नियोजना प्राय: सर्वत्र की गई है। 'नदी प्यासी थी' एकांकी का राजेश भावुक और विचार-प्रौढ कलाकार है। पद्मा यद्यपि डा0 कृष्णास्वरूप ककड की भावि पत्नी है, किन्तु वह भी राजेश की अकाट्य प्रतिभा एवं उसके प्रणय सम्बंधित उदात्तपूर्ण विचारों से अत्यंत प्रभावित होकर भीतर से अपना व्यक्तित्व उसे समर्पित कर देती है। तब उसकी भाषा भी तर्क और विवेचना का रूप छोड़ कर संवेदनात्मक हो जाती है - "मैं आज तक कविताएं गाती थी। आपको पाकर उन गीतों की आत्मा पा गई हूं।"

राजेश- लेकिन पद्मा-----डाक्टर ?

पद्मा- मैं स्वयं नहीं जानती उनके लिए क्या करूं। आज लगता है जैसे वे मेरे प्यार की पगडण्डी थे, जिसे मैं छोड़ आई हूं। आप मंजिल हैं जहां मैं पहुंचना

1- वही- 'आवाज का नीलाम' - पृ0 58-59

चाहती हूं।"[1] उपर्युक्त तथ्यांकन से यहस्पष्ट होन जाता है कि प्रस्तुत एकांकियों की भाषा विविध भावों, पात्रों एवं प्रसंगों के अनुसार यथानुकूल भंगिमा व गत्यानुरूपता का चोला धारण कर लेती है। इससे नाट्यात्मक वस्तु वा भाव-नियोजना को सहज, सरल व सजीव अभिव्यक्ति प्राप्त हो सकी है।

उक्त एकांकियों में प्रयुक्त संवाद प्रयोगात्मक वैविध्य लिए हुए हैं। 'नीली झील' शीर्षक एकांकी के प्रारंभ और अंत में दर्शकों की ओर संकेत कर तांत्रिक द्वारा कहे गए कथनों में लोक-नाट्य-शैली का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार 'आवाज का नीलाम' शीर्षक एकांकी के पृष्ठ 54 पर एकान्त-कथन का प्रयोग हुआ है। इसमें अस्वाभाविकता कहीं नहीं है। इससे पात्र विशेष के अन्तर्द्वन्द्व को सशक्त अभिव्यक्ति मिल पाई है। इसी एकांकी में पत्रकार दीवाकर और सेठ बाजोरिया के बीच 'टेलीफोन' के माध्यम से संवादों का गतिशील प्रयोग नितान्त आधुनिक है। प्रस्तुत प्रयोग रेडियो-नाट्य-शिल्प के अत्यधिक निकट का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। 'सृष्टि का आखिरी आदमी' शीर्षक एकांकी रेडियो-छन्द नाट्य का रूप है। इसमें प्रयुक्त संवाद दो प्रकार के मिलते हैं तथा परस्पर के पात्रों में प्रयुक्त कथोपकथन या संलाप-शैली और नैरेशन या प्रवक्ता(उद्घोषक के कथनों में व्यवहृत आलोचनात्मक शैली। कहीं-कहीं एक ही पात्र के द्वारा अधिक समय तक चलनेवाले संवाद भी उपलब्ध होते हैं। ऐसे संवाद प्राय: छोटे-छोटे वाक्यों में बड़ी क्षिप्रगति से कथा-वस्तु को अग्रसर करते हैं। इस दृष्टि से 'संगमर मर पर एक रात' एकांकी में जहांगीर, मेहरुन्निसा व आगन्तुक (शेर अफगन) के संवाद तथा 'नीली झील' एकांकी के बूढ़े तांत्रिक के संवाद विशेष दृष्टव्य हैं। उक्त संवादों में पात्रों के तर्क-वितर्क, प्रत्युत्पन्न मतित्व, आक्रोश-व्यंग्य और प्रश्नोत्तर शैली की कमनीय छटा को सहज ही देखा जा सकता है।

अत: सारत: यह कहा जा सकता है कि आलोच्य एकांकियों की भाषा भावाविष्ट गाम्भीर्य के साथ ही बोलचाल के सहज लहजों में ढली हुई होने से बहुत स्वाभाविक और सहज है।

1- वही-'नदी प्यासी थी' - पृ0 22, 23